संतमत-भजनावली

भाग १

(७ संत-महात्माओं के चुने हुए ३०१ सरस और गेय भजनों का अनुपम संकलन)

संकलन एवं संपादन :

स्वामी कमलानन्द

महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३ (बिहार)

मोबाईल नं० - ९३०४००१६६८

- ***प्रकाशक :***

  स्वामी कमलानन्द

  महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३, बिहार

- ***संस्करण :*** प्रथम, मई, सन् २,००८ ई०
  १००० प्रतियाँ

- ***मूल्य : १५/- रुपये मात्र***

- ***अक्षर-समायोजक :***

  राजेन्द्र साह

  मायागंज, बरारी, भागलपुर-३ (बिहार)

  मोबाईल नं० - ९९३४६१५९२२

- ***मुद्रक :*** क्वालिटी प्रेस

  जबारीपुर, तिलकामांझी, भागलपुर-३, बिहार

श्री सद्गुरवे नमः

समर्पण

भारत की उज्ज्वल संत-परम्परा में संतमत-सत्संग के महान आचार्य प्रातःस्मरणीय अनंत श्री विभूषित परम पूज्य परमाराध्य ब्रह्मलीन संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज, ब्रह्मलीन महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज तथा वर्त्तमान आचार्य हरिनंदन स्वामी जी महाराज के परम पावन पाद-पद्मों में सश्रद्धा-प्रेम-भक्ति समर्पित।

तेरी ज्ञान वाटिका के खिले पुष्प पर, भक्त भँवर गुंजार करे।
ज्ञान पराग को पीकर प्राणी, तेरे चरणों में अनुराग करे।।

त्वदीयं वस्तु सद्गुरो तुभ्यमेव समर्पये।

सत्संग सेवक
कमलानंद

॥ ॐ श्रीसद्गुरवे नमः ॥

दो शब्द

सुभाषितकार का कथन कितना मर्मस्पर्शी है–

संत वचन वह सुधा, देव भी जिसके भिखारी।
संत वचन वह धन है, जिसका नर प्रधान अधिकारी॥
मर्त्य से अमर बन जाता जिससे, वह संजीवन रज है।
संत वचन सब भव रोगों का, रामवाण भेषज है॥

संतों की पद्यात्मक वाणी का पाठकों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वाणी की धवलता में जग से विराग तथा प्रभु-पद में अनुराग होता है। विगत कई वर्षों से प्रेमी सज्जन का अनुग्रह होता रहा कि आप संतों की ज्ञेयवाणी का संग्रह कर 'संतमत भजनावली' के नाम से प्रकाशित करें। इधर कुछ महीनों से गुरुदेव की प्रेरणा हुई कि संतवाणी के संग्रह से जन-कल्याण होगा, इसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। तदुपरान्त इस पुनीत कार्य में लग गया।

सामान्य जन के बीच यह चर्चा होती है कि अमृत कोई पेय पदार्थ है, जिसका पान करने से स्वर्गादि लाभ होते हैं, परंच संत जन इस भ्रान्त धारणा का निवारण करते हैं और बतलाते हैं कि संतवाणी का श्रवण-मनन एवं निदिध्यासन करना ही अमृतपान है। वे शान्तिस्वरूप परमात्मा में तदाकार होकर परम शान्ति को प्राप्त किये हुए रहते हैं। फलस्वरूप उनकी वाणी ब्रह्मवाणी होती है। यह वाणी शब्दस्वरूपिणी है, जिसमें अमृत की धारा प्रवाहित होती है। इस अमृत का जो पान करेंगे, वे अमरत्व को प्राप्त करेंगे। त्रयताप से संतप्त प्राणी के कल्याण के लिए संतों की वाणी ही एकमात्र आधार है। वाणी के अंतराल में उद्घाटित सूक्ष्म विषय का चिन्तन करेंगे एवं आचरण में उतारेंगे, उनका

पूर्णरूपेण कल्याण होगा। जो सज्जन इस अमर वाणी का सेवन करते हैं, वे पतित से पावन तथा यम-जाल से निकल अमरत्व प्राप्त करते हैं। इतिहास साक्षी है कि भारत के सामान्य जन की आध्यात्मिक जागृति में संतवाणी सहायिका सिद्ध हुई है। इस पावन उद्देश्य से कतिपय संतवाणियों का संकलन किया है।

'संतमत भजनावली, भाग १' आप विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। आशा करता हूँ कि आप इस पुस्तक का अनुशीलन एवं पठन-पाठन कर अपना जीवन कल्याणमय बनावेंगे।

सत्संग सेवक

कमलानन्द

संतमत-भजनावली

भजन-सूची

भजन के बोल — पृष्ठांक

१. संत कबीर साहब

१. सुकिरत करि ले नाम -- १
२. भजन बिनु बाबरे तुने -- १
३. क्या माँगौ कछु थिर न -- १
४. अरे दिल गाफिल गफलत -- २
५. मैं तो आन पड़ी चोरन के -- २
६. जिनकी लगन गुरु सों -- २
७. बिन सतगुरु नर रहत -- २
८. बिनु गुरु ज्ञान नाम ना -- ३
९. उमरिया धोखे में खोय -- ३
१०. मन तोहे किहि विधि -- ३
११. तेरी गठरी में लागे चोर -- ४
-- ४
-- ४
-- ४
-- ५
-- ५
ले -- ५
-- ६
इंद -- ६
२०. जनम तरा बाता हा बात -- ६
२१. हमन है इश्क मस्ताना -- ६
२२. माल जिन्होंने जमा किया -- ७
२३. धुबिया जल बिच मरत -- ७
२४. करम गति टारे नाहिं टरी -- ७
२५. तन धर सुखिया कोइ न -- ८
२६. मैं केहि समुझावों सब -- ८
२७. बीत गये दिन भजन बिना -- ८
२८. नाम लगन छूटे नहीं -- ९

भजन के बोल — पृष्ठांक

२९. मन लागो मेरो यार -- ९
३०. नाम सुमिर नर बावरे -- ९
३१. मत बाँधो गठरिया अपजस-- १०
३२. भजु मन जीवन नाम सबेरा --१०
३३. यह मन जालिम जोर रे -- १०
३४. हमका ओढ़ावै चदरिया -- १०
३५. रमैया की दुलहिन लूटा -- १०
३६. माया महाठगिनि हम जानी --११
३७. आई गवनवाँ की सारी -- ११
३८. जो कोई या विधि मन -- ११
३९. हमरे सत्तनाम धन खेती -- १२
४०. कर साहब से प्रीत रे मन -- १२
४१. झीनी-झीनी बीनी चदरिया --१२
४२. घूँघट का पट खोल रे -- १२
४३. मेरी सुरत सुहागिनी जाग -- १३
४४. दुविधा को करि दूर -- १३
४५. परमातम गुरु निकट विराजे--१३
४६. चली मैं खोज में पिय की-- १४
४७. सतगुरु चरण भजस मन -- १४
४८. सूतल रहलूँ मैं नींद भरी -- १४
४९. तन की धन की कौन -- १५
५०. गगन घटा घहरानी साधो-- १५
५१. नैहरवा हमकाँ न भावै -- १५
५२. अखंड साहिब का नाम -- १५
५३. ऐसी नगरिया में किहि -- १६
५४. दरस दिवाना बावला -- १६
५५. सखिया वा घर सबसे -- १६
५६. कहौं उस देश की बतियाँ -- १७

भजन के बोल	पृष्ठांक
५७. जाके नाम न आवत हिये ––	१७
५८. अबधू भूले को घर लावै ––	१७
५९. अपने घट दियना बारु रे ––	१८
६०. मोरे जियरा बड़ा अंदेसवा ––	१८
६१. जानता कोइ ख्याल ऐसा ––	१८
६२. विमल विमल अनहद ––	१९
६३. मन तू मानत क्यों न ––	१९
६४. जो कोइ निरगुन दरसन ––	२०
६५. कोइ चतुर न पावै पार ––	२०
६६. लोका मति का भोरा रे ––	२०
६७. जियत न मार मुआ मत ––	२१
६८. रस गगन गुफा में अजर ––	२१
६९. कोइ देखो लोगो नैया ––	२१
७०. ठगिनि क्या नैना चमकावे ––	२२
७१. कोई सुनता है गुरु ज्ञानी ––	२२
७२. साईं न पठाया न्यामत हू ––	२२
७३. अँखिया लागी रहन दो ––	२३
७४. मुरशिद नैनो बीच नबी है ––	२३
७५. भाइ रे नयन रसिक जो––	२३
७६. संतो जागत नींद न कीजै ––	२३
७७. मन तू थकत थकत थकि ––	२४
७८. संतो आवै जाय सो माया ––	२४
७९. डर लागै औ हाँसी आवै ––	२५
८०. बाबू ऐसो है संसार तिहारो ––	२५
८१. गगन की ओट निसाना है ––	२६
८२. भक्ती का मारग झीना रे ––	२६
८३. साधो शब्द साधना कीजै ––	२६
८४. बाबा जोगी एक अकेला ––	२६
८५. साधो यह तन ठाठ तँबूरे ––	२७
८६. राम तेरी माया दुन्द मचावै ––	२७
८७. आपन पौ आपुहि बिसर्‌यो ––	२७
८८. रामनाम भजु रामनाम भजु ––	२७
८९. अब कहाँ चलेउ अकेले ––	२८
९०. चलहु का टेढ़ो-टेढ़ो-टेढ़ो ––	२८
९१. फिरहु का फूले-फूले-फूले ––	२८
९२. पानी में मीन पियासी ––	२९
९३. संतो सहज समाधि भली ––	२९
९४. मन मस्त हुआ तब क्या ––	२९
९५. पंडित देखहु हृदय बिचारी ––	३०
९६. ऐसो भरम बिगुर्चन भारी ––	३०
९७. अल्लाह राम जियो तेरी ––	३०
९८. वारी जाऊँ मैं सद्‌गुरु के––	३१
९९. मत कर मोह तू ––	३१
१००. जाग पियारी अब का ––	३१
१०१. गुरु दियना बारु रे ––	३१
१०२. यह कलि न कोई अपनो ––	३२
१०३. साध संगत गुरुदेव ––	३२
१०४. करि के कौल करार ––	३२
१०५. नारद साध सों अंतर ––	३३
१०६. ऐसो जनम नहीं पइवे ––	३३
१०७. मन तू क्यों भूला रे भाई ––	३३
१०८. सतगुरु मेरी चूक संभारो ––	३४
१०९. हमारे मन कब भजिहौं ––	३४
११०. अब हम आनंद के घर ––	३४
१११. संतो अचरज भौ इक ––	३५
११२. राम निरंजन न्यारा रे––	३५
११३. लोगा तुमहीं मति के ––	३५
११४. हरि बिन तेरा-मेरा रे ––	३५
११५. चेतो मानुष तन पाई के ––	३६
११६. मिलि चलु सखिया ––	३६
११७. सुरति के डोरिया ––	३७
११८. फूल एक फूलल ––	३८

भजन के बोल	पृष्ठांक
११९. सोलहु शृंगार करि––	३८
१२०. चढ़ी चलु गगन ––	३८
१२१. गुरु भक्ति की महिमा ––	३९
१२२. अरे मन धीरज काहे न ––	३९
१२३. जग में सोइ बैराग ––	३९
१२४. संतो! सो सतगुरु मोहि ––	३९
१२५. सुमिरन बिना गोता ––	४०
१२६. संत जन करत साहिबी ––	४०
१२७. जो कोई या विधि ––	४०
१२८. गुरु ने मोहि दीन्ही अजब ––	४१
१२९. जा घर आवागमन न ––	४१
१३०. गुरुदेव बिन जीव की ––	४१
१३१. दिन नीके बीते जाते हैं ––	४१
१३२. करु सत्संग भरम गढ़ ––	४२
१३३. मेरे सतगुरु पकड़ी बाँह ––	४२
१३४. मेरो मन अपने राम ––	४२
१३५. मन तोहि नाच नचावै ––	४२
१३६. पढ़ो मन ओनामासी धंग ––	४३
१३७. बंदे जागो अब भइ भोर ––	४३
१३८. पास खड़ा नजरों में न ––	४३
१३९. जग में गुरु समान नहीं ––	४४
१४०. तलफै बिन बालम मोर ––	४४
१४१. सब बातन में चतुर है ––	४४
१४२. होली खेलत संत सुजान ––	४४
१४३. यही घड़ी यही बेला ––	४५
१४४. काहू न मन बस कीन्हा ––	४५
१४५. ओढ़ि ले रामनाम चदरिया ––	४५
१४६. घट ही में राम खोजै छो ––	४६
१४७. कब भजिहौं सतनाम ––	४६
१४८. दिवाने मन भजन बिना ––	४६
१४९. साधो देखो जग बौराना ––	४७
१५०. मानत नहिं मन मोरा ––	४७
१५१. सतगुरु संग होरी खेलिये ––	४८
१५२. गुरु से लगन कठिन है ––	४८
२. महायोगी गोरखनाथ	
१५३. हँसिबा खेलिबा धरिबा ––	४९
१५४. गोरख बोलै सुणहु रे ––	१९
१५५. गोरख बोलै सुणहु रे ––	४९
३. गुरु नानक साहब	
१५६. तूँ सुमिरन कर ले मेरे ––	५०
१५७. अब मैं कौन उपाय करूँ ––	५०
१५८. गुरु बिन तेरो कोउ न ––	५०
१५९. जा में भजन राम को ––	५०
१६०. जगत में झूठी देखी प्रीत––	५१
१६१. प्रीतम जानि लेहु मन ––	५१
१६२. राम सुमिर राम सुमिर ––	५१
१६३. या जग मीत न देख्यो ––	५१
१६४. मैंने ऐसा सतगुरु पाया ––	५२
१६५. नहिं ऐसो जनम बारंबार ––	५२
१६६. साधो यह जग भरम ––	५२
१६७. यह मन नेक न कह्यो ––	५३
१६८. रे मन राम सों कर ––	५३
१६९. साधो गोविन्द के गुण––	५३
१७०. काहे रे! बन खोजन ––	५३
१७१. मोहु कुटुम्बु मोहु सभकार––	५३
१७२. प्रभु मेरे प्रीतम प्रान––	५४
१७३. रे मन यहि विधि जोग––	५४
१७४. सब कछु जीवत को––	५४
१७५. राम नाम को नमस्कार––	५४
१७६. मुरसिद मेरा मरहमी––	५५
१७७. साधो मन का मान––	५५
१७८. शब्द तत्तु वीर्य संसार––	५५

भजन के बोल	पृष्ठांक
१७९. रे मन ऐसो करि--	५६
१८०. बिसर गई सब तात--	५६
१८१. हौं कुरबाने जाउ पियारे--	५६
१८२. भूलिउ मन माइया--	५६
१८३. बिनु सतगुरु सेवे जोगु--	५६
१८४. जोगु न खिंथा जोग न--	५७
१८५. अलख अपार अगम--	५७
१८६. नदरि करे ता सिमरिआ--	५८
१८७. गुरुदेव माता गुरुदेव --	५८
१८८. मन कर कबहुँ न--	५८
१८९. मन की मन ही माँहि--	५८
१९०. सब किछु घर महि--	५९
४. गोस्वामी तुलसीदास	
१९१. मन पछितैहैं अवसर--	५९
१९२. अब लौं नसानी अब--	५९
१९३. अस कछु समुझि--	६०
१९४. राम जपु राम जपु--	६०
१९५. ऐसो को उदार जग--	६०
१९६. ममता तू न गई मेरे मन--	६१
१९७ रघुवर तुमको मेरी लाज--	६१
१९८. ऐसी मूढ़ता या मन की--	६१
१९९. तू दयालु दीन हौं--	६१
२००. माधव! मो समान जग--	६२
२०१. जाके प्रिय न राम--	६२
२०२. यह विनती रघुवीर--	६२
२०३. जाऊँ कहाँ तजि चरण--	६३
२०४. जो मोहि राम लागते--	६३
२०५. ते नर नरक रूप जीवत--	६३
२०६. हे हरि! कवन जतन--	६३
२०७. लाभ कहा मानुष--	६४
२०८. लाज न आवत दास--	६४

भजन के बोल	पृष्ठांक
२०९. हरि! तुम बहुत अनुग्रह--	६५
२१०. कबहुँक हौं यहि रहनि--	६५
२११. सुमिरन करले रामनाम--	६५
२१२. माधव मोह फाँस क्यों--	६५
२१३. केहू भाँति कृपासिंधु--	६६
२१४. मेरो मन हरिजू! हठ--	६६
२१५. तऊ न मेरे अघ अवगुन--	६६
२१६. भजु मन रामचरन--	६७
२१७. रघुवर! रावरि यहै--	६७
२१८. दीन को दयालु दानि--	६७
२१९. कुटुंब तजि सरन राम--	६८
२२०. जानत प्रीति-रीति--	६८
२२१. सुनु मन मूढ़ सिखावन--	६९
२२२. रघुपति भगति करत--	६९
२२३. माधव अस तुम्हारि--	६९
२२४. केशव कहि न जाई--	७०
२२५. मोहि मूढ़ मन बहुत--	७०
२२६. कबहूँ मन विश्राम--	७०
२२७. एहि तें मैं हरि ज्ञान--	७०
२२८. जागु जागु जागु जीव--	७१
५. संत सूरदास	
२२९. रे मन मूरख जनम--	७१
२३०. सबै दिन गये विषय--	७१
२३१. सब दिन होत न एक--	७२
२३२. वृक्षन ते मत ले, मन--	७२
२३३. सबै दिन नाहिं एक से--	७२
२३४. गुरु बिन ऐसी कौन करे-	७२
२३५. प्रभु मेरे अवगुन चित न-	७३
२३६. जा दिन संत पाहुने आवत-	७३
२३७. अपने जान मैं बहुत--	७३
२३८. उधो कर्मण की गति--	७३

भजन के बोल	पृष्ठांक
२३९. तजौ मन हरि विमुखन--	७४
२४०. रे मन जनम पदारथ--	७४
२४१. जा दिन मन पंछी--	७४
२४२. मेरो मन अनत कहाँ--	७५
२४३. मो सम कौन कुटिल--	७५
२४४. भजन बिनु कुकर--	७५
२४५. भजन बिनु जीवत--	७५
२४६. अबकी राखि लेहु--	७६
२४७. सबसों ऊँची प्रेम--	७६
२४८. भजन बिनु बैल--	७६
२४९. अविगत गति कछु--	७६
२५०. जौं लौं सत्य स्वरूप--	७७
२५१. अब मैं जानी देह--	७७
२५२. अबके माधव मोहि--	७७
२५३. अपुनपौ आपुन ही--	७७
२५४. है हरि नाम को--	७८
२५५. तुम मेरी राखो लाज--	७८
२५६. जो हम भले बुरे--	७८
२५७. मन तासों केतिक--	७८
२५८. हैं प्रभु! मोहुँ तें बढ़ि--	७९
२५९. कहा कमी जाके राम--	७९
२६०. जो तुम रामनाम चित--	७९
२६१. अब मैं नाच्यो बहुत--	७९
२६२. अपुनपौ आपुन ही में--	८०
२६३. ताते सेइये यदुराई--	८०
२६४. कितक दिन हरि सुमिरन-	८०
२६५. सोई भलो जो रामहिं--	८१
२६६. प्रभु हौं सब पतितन--	८१
२६७. उधो मन माने की बात--	८१
२६८. कहते हैं आगे जपिहैं--	८१
२६९. जापर दीनानाथ ढरैं--	८२
२७०. मुरली धुन गाजा--	८२

भजन के बोल	पृष्ठांक
२७१. दो में एकौ न भई--	८२
२७२. हरि बिनु कोऊ काम न--	८३
२७३. अब नर चेतो भली भली--	८३
२७४. जो मन कबहुँक हरि को--	८३
६. सद्गुरु महर्षि मँहीं परमहंस	
२७५. गंग जमुन युग धार--	८४
२७६. आगे माई सतगुरु--	८४
२७७. संतन मत भेद प्रचार--	८५
२७८. जय जयति सद्गुरु--	८५
२७९. अति पावन गुरु मंत्र--	८५
२८०. गुरु हरि चरण में प्रीति--	८६
२८१. साँझ भये गुरु सुमिरो--	८६
२८२. यहि विधि जैबै भव पार--	८६
२८३. आओ वीरो मर्द बनो--	८७
२८४. निज तन में खोज--	८७
२८५. क्या सोवत गफलत--	८७
२८६. जनि लिपटो रे प्यारे--	८८
२८७. यहि मानुष देह समैया--	८८
२८८. समय गया फिरता नहिं--	८८
२८९. खोज करो अंतर उजियारी--	८९
७. महर्षि संतसेवी परमहंस	
२९०. सर्वेश को भज ले सुजन--	८९
२९१. गुरु सद्ज्ञान दाता हैं--	८९
२९२. गुरुवर! भक्ति अपनी--	९०
२९३. लीजिये गुरु से ज्ञान--	९०
२९४. करो सत्संग नित भाई--	९१
२९५. करो तुम साधना मन से--	९१
२९६. मैं नहीं मेरा नहीं--	९१
२९७. कहो कोइ परदेशी की--	९२
२९८. कोइ कहै प्रभू है कैसा--	९२
२९९. सुसंग से सुख होता है--	९२
३००. ईश की ही ईषणा से--	९३
३०१. हे मतिहीनी माछरी--	९३
संतमत-सत्संग की स्तुति-विनती-	९५

संतमत-भजनावली

संत कबीर साहब

(१)

सुकिरत करि ले नाम सुमिरि ले, को जानै कल की।
जगत में खबर नहीं पल की ।।टेक।।
झूठ कपट करि माया जोरिन, बात करैं छल की।
पाप की पोट धरे सिर ऊपर, किस बिधि ह्वै हलकी ।।१।।
यह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मट्टी की।
साँस साँस में नाम सुमिरि ले, अवधि घटै तन की ।।२।।
काया अंदर हंसा बोलै, खुसियाँ कर दिल की।
जब यह हंसा निकरि जाहिंगे, मट्टी जंगल की ।।३।।
काम क्रोध मद लोभ निवारो, याही बात असल की।
ज्ञान बैराग दया मन राखो, कहै कबीरा दिल की ।।४।।

(२)

भजन बिनु बाबरे, तुने हीरा जनम गमायो ।।टेक।।
ना संगति साधुन की कीन्हों, ना गुरु द्वारे आयो।
बहि बहि मरै बैल की नाईं, जो नियों सो खायो ।।१।।
यह संसार हाट बनियाँ की, सब जब सौदे आयो।
काहु ने कीन्हो दाम चौगुनो, काहु ने मूल गमायो ।।२।।
यह संसार फूल सेमर की, लाली देख लुभायो।
मारा चोंच रुआ जब निकस्यो, सिर धुनि के पछतायो ।।३।।
तू बन्दे माया के लोभी, ममता महल बनायो।
कहै कबीर एक राम भजे बिनु, अंत समय दुःख पायो ।।४।।

(३)

क्या माँगौं कछु थिर न रहाई, देखत नैन चल्यो जग जाई ।।१।।
इक लख पूत सवा लख नाती, जा रावन घर दिया न बाती ।।२।।
लंका-सा कोट समुद्र-सी खाई, जा रावन की खबर न पाई ।।३।।
सोने कै महल रूपे कै छाजा, छोड़ि चले नगरी के राजा ।।४।।
कोइ करै महल कोई करै टाटी, उड़ि जाय हंस पड़ी रहै माटी ।।५।।
आवत संग न जात सँगाती, कहा भये दल बाँधे हाथी ।।६।।
कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झारि ज्यों चला जुवारी ।।७।।

(४)

अरे दिल गाफिल गफलत मत कर, एक दिन जम तेरे आवेगा रे ॥टेक॥
सौदा करन को या जग आया, पूँजी लाया मूल गँवाया।
प्रेम नगर का अंत न पाया, ज्यों आया त्यों जावेगा रे ।।१।।
सुन मेरे साजन सुन मेरे मीता, या जीवन में क्या क्या कीता।
सिर पाहन का बोझा लीता, आगे कौन छुड़ावेगा रे ।।२।।
परली पार तेरा मीता खड़िया, उस मिलने का ध्यान न धरिया।
टूटी नाव ऊपर जा बैठा, गाफिल गोता खावेगा रे ।।३।।
दास कबीर कहै समुझाई, अंतकाल तेरो कौन सहाई।
चला अकेला संग न काई, किया आपना पावेगा रे ।।४।।

(५)

मैं तो आन पड़ी चोरन के नगर, सतसंग बिना जिय तरसे ।।१।।
इस सतसंग में लाभ बहुत है, तुरत मिलावै गुरु से ।।२।।
मूरख जन कोइ सार न जानै, सतसंग में अमृत बरसे ।।३।।
सब्द-सा हीरा पटक हाथ से, मुट्ठी भरी कंकर से ।।४।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, सुरत करो वहि घर से ।।५।।

(६)

जिनकी लगन गुरू सों नाहीं ।।टेक।।
ते नर खर कूकर सम जग में, बिरथा जन्म गँवाहीं।
अमृत छोड़ि बिषय रस पीवैं, धृग धृग तिनके ताईं ।।१।।
हरी बेल की कोरि तुमड़िया, सब तीरथ करि आई।
जगन्नाथ के दरसन करके, अजहुँ न गई कड़ुवाई ।।२।।
जैसे फूल उजाड़ को लागो, बिन स्वारथ झरि जाई।
कहै कबीर बिन बचन गुरू के, अन्त काल पछिताई ।।३।।

(७)

बिन सतगुरु नर रहत भुलाना, खोजत फिरत राह नहिं जाना ।।टेक।।
केहर सुत ले आयो गरड़िया, पाल पोस उन कीन्ह सयाना।
करत कलोल रहत अजयन सँग, आपन मर्म उनहुँ नहिं जाना ।।१।।
केहर इक जंगल से आयो, ताहि देख बहुतै रिसियाना।
पकड़ि के भेद तुरत समुझाया, आपन दसा देख मुसक्याना ।।२।।
जस कुरंग बिच बसत बासना, खोजत मूढ़ फिरत चौगाना।
कर उसवास मनै में देखै, यह सुगंधि धौं कहाँ बसाना ।।३।।

अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है, छक्यो रूप नहिं जात बखाना ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, उलटि आपु में आपु समाना ॥४॥

(८)

बिनु गुरु ज्ञान नाम ना पैहो, बिरथा जनम गँवाई हो ।टेक॥
जल भरि कुंभ धरे जल भीतर, बाहर भीतर पानी हो ।
उलटि कुंभ जल जलहि समैहैं, तब का करिहौ ज्ञानी हो ॥१॥
बिन करताल पखावज बाजै, बिनु रसना गुन गाया हो ।
गावनहार के रूप न रेखा, सतगुरु अलख लखाया हो ॥२॥
है अथाह थाह सबहिन में, दरिया लहर समानी हो ।
जाल डारि का करिहौं धीमर, मीन के ह्वै गै पानी हो ॥३॥
पंछी क खोज औ मीन कै मारग, ढूँढ़े ना कोइ पाया हो ।
कहै कबीर सतगुरु मिल पूरा, भूले को राह बताया हो ॥४॥

(९)

उमरिया धोखे में खोय दियो ॥
द्वादस बरस बालापन बीत्यो, बीस में ज्वान भयो ।
तीस बरस माया के प्रेरे, देश-विदेश गयो ॥१॥
चालीस बरस अंत जब लग्यो, बाढ्यो मोह नयो ।
धन औ धाम पुत्र के कारण, निशि दिन सोच भयो ॥२॥
बरस पचास कमर भयो टेढ़ो, सोचत खाट पर्‌यो ।
लड़िका बौहर बोली बोलै, बुढ़ऊ मरि न गयो ॥३॥
बरस साठ सत्तर के भीतर, केश सफेद भयो ।
बात पित्त औ कफ घेरि लियो है, नैनन नीर बह्यो ॥४॥
ना गुरु भक्ति न साधु की संगति, ना शुभ कर्म कियो ।
कहहिँ 'कबीर' सुनो भाई साधो, चोला छूटि गयो ॥५॥

(१०)

मन तोहे किहि बिध मैं समझाऊँ ।टेक॥
सोना होय तो सुहाग मँगाऊँ, बंकनाल रस लाऊँ ।
ज्ञान सबद की फूँक चलाऊँ, पानी पर पिघलाऊँ ॥१॥
घोड़ा होय तो लगाम लगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ ।
होय सवार तेरे पर बैठूँ, चाबूक देकै चलाऊँ ॥२॥
हाथी होय जंजीर गढ़ाऊँ, चारो पैर बँधाऊँ ।
होय महावत तेरे पर बैठूँ, अंकुश लेके चलाऊँ ॥३॥

लोहा होय तो ऐरण मँगाऊँ, ऊपर धुवन धुवाऊँ ।
धूवन की घनघोर मचाऊँ, जंतर तार खिंचाऊँ ॥४॥
ग्यानी न हो ग्यान सिखाऊँ, सत्य की राह चलाऊँ ।
कहत कबीर सुनो भाई साधू, अमरापुर पहुँचाऊँ ॥५॥

(११)

तोरी गठरी में लागा चोर, बटोहिया का सोवै ।टेक॥
पाँच पचीस तीन है चोरवा, यह सब कीन्हा सोर ।
जाग सबेरा बाट अनेड़ा, फिर नहिं लागै जोर ॥१॥
भवसागर इक नदी बहतु है, बिन उतरे जाव बोर ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, जागत कीजे भोर ॥२॥

(१२)

कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो ।टेक॥
चंदन काठ कै बनल खटोलना, तापर दुलहिन सूतल हो ॥१॥
उठो री सखी मोरी माँग सँवारो, दुलहा मोसे रूसल हो ॥२॥
आये जमराज पलँग चढ़ि बैठे, नैनन आँसू टूटल हो ॥३॥
चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुँ दिसि धू धू ऊठल हो ॥४॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, जग से नाता छूटल हो ॥५॥

(१३)

रहना नहिं देस बिराना है ।टेक॥
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है ॥१॥
यह संसार काँटे की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है ॥२॥
यह संसार झाड़ औ झाँखर, आग लगे बरि जाना है ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है ॥४॥

(१४)

करो जतन सखी साईं मिलन की ।टेक॥
गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया, तजि दे बुधि लरिकैयाँ खेलन की ॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की ॥
ऊँचा महल अजब रँग बँगला, साईं की सेज वहाँ लगी फुलन की ॥
तन मन धन सब अर्पन कर वहँ, सुरत सम्हार पड़ु पैयाँ सजन की ॥
कहै कबीर निर्भय होय हंसा, कुंजी बता द्यों ताला खुलन की ॥

(१५)

कायागढ़ अजब बाजार सौदा करै सो जानै ।टेक॥
इस काया में हाट लगाकर, बैठा साहुकार ।
इस काया में चोर फिरतु है, झूठा ढीठ लवार ॥१॥
इस काया में हीरा-मोती, रतन की खान अपार ।
इस काया में लाल जवाहर, कोइ परिखै परखनहार ॥२॥
इस काया में वेद पढ़ाकर, पंडित करै विचार ।
इस काया में काजी मुलना, देबै बाँग पुकार ॥३॥
माटी का गढ़ कोट बनाया, तिनका ओट पहाड़ ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, गुरु बिन जग अंधियार ॥४॥

(१६)

गुरु से कर मेल गँवारा । का सोचत बारम्बारा ॥१॥
जब पार उतरना चहिये । तब केवट से मिलि रहिये ॥२॥
जब उतरि जाय भव पारा । तब छूटै यह संसारा ॥३॥
जब दरसन देखा चहिये । तब दर्पन माँजत रहिये ॥४॥
जब दर्पन लागी काई । तब दरसन कहँ तें पाई ॥५॥
जब गढ़ पर बजी बधाई । तब देख तमासे जाई ॥६॥
जब गढ़ बिच होत सकेला । तब हंसा चलत अकेला ॥७॥
कह कबीर देख मन करनी । वाके अंतर बीच कतरनी ॥८॥
कतरनि कै गाँठि न छूटै । तब पकरि-पकरि जम लूटै ॥९॥

(१७)

दिन दस नैहरवाँ खेलि ले, निज सासुर जाना हो ॥ टेक॥
इक तो अँधेरी कोठरी, ता में दिया न बाती हो ।
बहियाँ पकरि जम लै चले, कोइ संग न साथी हो ॥१॥
कोठा ऊपर कोठरी, जोगी धुनिया रमाया हो ।
अंग भभूत लगाइ के, जोगी रैनि गँवाया हो ॥२॥
गंग जमुन बिच रेतवा, तहँ बाग लगाया हो ।
कच्ची कली इक तोरि के, मलिया पछिताया हो ॥३॥
गिरि परबत कै माछरी, भौसागर आया हो ।
कहै कबीर धर्मदास से, जम बंसी लगाया हो ॥४॥

(१८)

मन फूला फूला फिरै जगत में कैसा नाता रे ।टेक॥
माता कहै यह पुत्र हमारा, बहिन कहै बिर मेरा ।
भाई कहै यह भुजा हमारी, नारि कहै नर मेरा ॥१॥
पेट पकरि के माता रोवै, बाँहि पकरि के भाई ।
लपटि झपटि के तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई ॥२॥
जब लग जीवै माता रोवै, बहिन रोवै दस मासा ।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै, फेर करै घर बासा ॥३॥
चार गजी चरगजी मँगाया, चढ़ा काठ की घोड़ी ।
चारो कोने आग लगाया, फूँक दियो जस होरी ॥४॥
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को, केस जरै जस घासा ।
सोना ऐसी काया जरि गइ, कोई न आयो पासा ॥५॥
घर की तिरिया ढूँढ़न लागी, ढूँढ़ि फिरी चहुँ देसा ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, छाँड़ो जग की आसा ॥६॥

(१९)

भजो रे भैया राम गाबिन्द हरी ।
जप तप साधन नहिं कछु लागत, खरचत नहिं गठरी ॥१॥
सतत संपत सुख के कारन, जासों भूल परी ॥२॥
कहत कबीर राम न जा मुख, ता मुख धूल भरी ॥३॥

(२०)

जनम तेरा बातों ही बीत गयो, तूने कबहूँ न कृष्ण कह्यो ॥
पाँच बरस का भोला-भाला, अब तो बीस भयो ।
मकर पचीसी माया कारण, देश विदेश गयो ॥
तीस बरस की अब मति उपजी, लोभ बढ़े नित नयो ।
माया जोड़ी लाख करोरी, अजहुँ न तृप्त भयो ॥
बृद्ध भयो तन आलस उपजी, कफ पित नित कंठ रह्यो ।
सतसंगति कबहूँ नहिं कीनी, बिरथा जनम गयो ॥
यह संसार मतलब का लोभी, झूँठा ठाट रच्यो ।
कहत 'कबीर' समझ मन मूरख, तू क्यों भूल गयो ॥

(२१)

हमन हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या ।
रहें आजाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या ॥१॥

जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-ब-दर फिरते ।
हमारा यार है हममें, हमन को इंतिजारी क्या ॥२॥
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सर पटकता है ।
हमन गुरु नाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या ॥३॥
न पल बिछुड़ें पिया हमसे, न हम बिछुड़ें पियारे से ।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या ॥४॥
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से ।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या ॥५॥

(२२)

माल जिन्होंने जमा किया, सौदा परिहारे जाते हैं ।टेक॥
ऊँचा नीचा महल बनाया, जा बैठे चौबारे हैं ।
सुबह तलक तो जागे रहना, साम पुकारे जाते हैं ॥१॥
जग के रस्ते मत चल प्यारे, ठग या पार घनेरे हैं ।
इस नगरी के बीच मुसाफिर, अक्सर मारे जाते हैं ॥२॥
भाइ बंध औ कुटुँब कबीला, सब ठग ठग के खाते हैं ।
आया जम जब दिया नगारा, साफ अलग हो जाते हैं ॥३॥
जोरू कौन खसम है किसका, कौन किसी के नाते हैं ।
कहै कबीर जो बँदगी गाफिल, काल उन्हीं को खाते हैं ॥४॥

(२३)

धुबिया जल बिच मरत पियासा ।टेक॥
जब में ठाढ़ पियै नहिं मूरख, अच्छा जल है खासा ।
अपने घट कै मरम न जानै, करै धुबियन कै आसा ॥१॥
छिन में धुबिया रोवै धोवै, छिन में होइ उदासा ।
आपै बरै करम की रसरी, आपन गर कै फाँसा ॥२॥
सच्चा साबुन लेहि न मूरख, है संतन के पासा ।
दाग पुराना छूटत नाहीं, धोवत बारह मासा ॥३॥
एक रती कौ जोरि लगावै, छोरि दिये भरि मासा ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आछत अन्न उपासा ॥४॥

(२४)

करम गति टारे नाहिं टरी ॥ टेक॥
मुनि बसिष्ट से पंडित ज्ञानी, सोध के लगन धरी ।
सीता हरन मरन दसरथ को, बन में बिपति परी ॥१॥

कहँ वह फन्द कहाँ वह पारधि, कहँ वह मिरग चरी ।
सीता को हरि ले गयो रावन, सोने की लंक जरी ॥२॥
नीच हाथ हरिचंद बिकाने, बलि पाताल धरी ।
कोटि गाय नित पुन्य करत नृग, गिरगिट जोनि परी ॥३॥
पाण्डव जिनके आपु सारथी, तिन पर बिपति परी ।
दुरजोधन को गर्ब घटायो, जदुकुल नास करी ॥४॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा, बिधि संजोग परी ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, होनी होके रही ॥५॥

(२५)

तनधर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो ।
उदय अस्त की बात कहतु हैं, सबका किया बिबेका हो ॥१॥
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो ।
सुकदेव अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो ॥२॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो ।
आसा तृस्ना सबको ब्यापै, कोई महल न सूना हो ॥३॥
साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो ।
ब्रह्मा बिस्नु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो ॥४॥
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी बिपरीती हो ।
कहै कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो ॥५॥

(२६)

मैं केहि समुझावों सब जग अंधा ॥
इक-दुई होय उन्हें समुझावौं, सबहि भुलाना पेट के धंधा ।
पानी के घोड़ा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस के बुंदा ॥
गहरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा के पड़िगा फंदा ।
घर की वस्तु नजर नहिं आवत, दियना बारिके ढूँढ़त अंधा ॥
लागि आग सभै बन जरिगा, बिनु गुरू ज्ञान भटकिगा बंदा ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इन दिन जाय लंगोटी झार बंदा ॥

(२७)

बीत गये दिन भजन बिना रे ।टेक॥
बाल अवस्था खेल गमायो, जब जवानी तब मान घना रे ।
पाके केश थके इन्द्रिन सब, रोग ग्रसित भये सकल तना रे ॥

लाहे कारण मूल गँवायो, अजहुँ न मिटि मन की तृष्णा रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, पार उतर गये संत जना रे॥

(२८)

नाम लगन छूटै नहीं, सोइ साधु सयाना हो॥ टेक॥
माटी कै बरतन बन्यो, पानी लै साना हो।
बिनसत बार न लागिहै, राजा क्या राना हो॥१॥
क्या सराय का बासना, सब लोग बिगाना हो।
होत भोर सब उठि चले, दूर देस को जाना हो॥२॥
आठ पहर सन्मुख लड़ै, सो बाँधै बाना हो।
जीत चला भवसागर, सोइ सूरा मरदाना हो॥३॥
सतगुरु की सेवा करै, पावै परवाना हो।
कहै कबीर धर्मदास से, तेहि काल डेराना हो॥४॥

(२९)

मन लागो मेरो यार फकीरी में॥ टेक॥
जो सुख पावो नाम-भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में॥१॥
भला बुरा सबको सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में॥२॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में॥३॥
हाथ में कूँड़ी बगल में सोंटा, चारो दिसा जगीरी में॥४॥
आखिर यह तन खाक मिलैगा, कहा फिरत मगरूरी में॥५॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिलै सबूरी में॥६॥

(३०)

नाम सुमिर नर बावरे, तोरी सदा न देहिया रे॥ टेक॥
यह माया कहो कौन की, केकरे सँग लागी रे।
गुदरी-सी उठि जायगी, चित चेत अभागी रे॥१॥
सोने की लंका बनी, भइ धूर की धानी रे।
सोइ रावन की साहिबी, छिन माहिं बिलानी रे॥२॥
सोरह जोजन के मद्ध में, चले छत्र की छाँही रे।
सोइ दुर्जोधन मिलि गये, माटी के माहीं रे॥३॥
भवसागर में आइके, कछु कियो न नेका रे।
यह जियरा अनमोल है, कौड़ी को फेका रे॥४॥
कहै कबीर पुकारि के, इहाँ कोइ न अपना रे।
यह जियरा चलि जायगा, जस रैन का सपना रे॥५॥

(३१)

मत बाँधो गठरिया अपजस की॥टेक॥
यह संसार बादल की छाया, करो कमाइ भाई हरि रस की॥१॥
जोर जवानी ढलक जायगी, बाल अवस्था तेरी दिन दस की॥२॥
धर्मदूत जब फाँसी डारे, खबर लेवे तेरे नस नस की॥३॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जब तेरे बात नहीं बस की॥४॥

(३२)

भजु मन जीवन नाम सबेरा॥टेक॥
सुन्दर देह देखि जिनि भूलौ, झपट लेत जस बाज बटेरा।
या देही कौ गरब न कीजै, उड़ि पंछी जस लेत बसेरा॥१॥
या नगरी में रहन न पैहौ, कोइ रहि जाय न दुक्ख घनेरा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, मानुष जनम न पैहौ फेरा॥२॥

(३३)

यह मन जालिम जोर री, बरजे नहिं मानै॥ टेक॥
जो कोइ मन को पकरा चाहै, भागत साँकर तोर री॥
सुर नर मुनि सब पचि पचि हारे, हाथ न आवै चोर री॥
जो हंसा सतगुरु कै होई, राखै ममता छोर री॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बचो गुरुन की ओट री॥

(३४)

हम काँ ओढ़ावे चदरिया, चलती बिरिया॥टेक॥
प्रान राम जब निकसन लागे, उलट गईं दूनों नैन पुतरिया।
भीतर से जब बाहर लाये, छूटि गई सब महल अटरिया॥
चार जने मिलि खाट उठाइन, रोवत ले चले डगर डगरिया।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, संग चलेगी वहि सूखी लकरिया॥

(३५)

रमैया की दुलहिन ने लूटा बजार॥टेक॥
सुरपुर लूटा नागपुर लूटा, तिन लोक मचि गइ हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार॥१॥
स्त्रिंगी की मिंगी करि डारी, पारासर कै उदर बिदार।
कनफूँका चिदाकासी लूटे, जोगेसुर लूटे करत बिचार॥२॥
हम तो बच गये साहिब दया से, सब्द डोर गहि उतरे पार।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, इस ठगनी से रहो हुसियार॥३॥

(३६)

माया महा ठगिनि हम जानी ।टेक॥
तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी ॥
केसव के कमला ह्वै बैठी, सिव के भवन भवानी ॥
पंडा के मूरत ह्वै बैठी, तीरथ में भइ पानी ॥
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी ॥
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहु के कौड़ी कानी ॥
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ॥
कहै कबीर सुनो हो सन्तो, यह सब अकथ कहानी ॥

(३७)

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबहीं मोरी बारी ।टेक॥
साज समाज पिया लै आये, और कहरिया चारी ।
बम्हना बेदरदी अचरा पकरिके, जोरत गँठिया हमारी ॥
सखी सब पारत गारी ॥
बिधि गति बाम कछु समझ परत ना, बैरी भई महतारी ।
रोइ रोइ अँखिया मोर पोंछत, घरवाँ से देत निकारी ॥
भई सबकौ हम भारी ॥
गवन कराइ पिया लै चाले, इत उत बाट निहारी ।
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटे महल अटारी ॥
करम गति टरै न टारी ॥
नदिया किनारे बलम मोर रसिया, दीन्ह घुँघट पट टारी ।
थरथराय तन काँपन लागे, काहू न देखि हमारी ॥
पिया लै आये गोहारी ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु बिचारी ।
अबके गौना बहुरि नहिं औना, करि ले भेंट अंकवारी ॥
एक बेर मिलि ले प्यारी ॥

(३८)

जो कोइ या बिधि मन को लगावै । मन के लगाये गुरु पावै ।टेक॥
जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढोलिया ढोल बजावै ।
अपना बोझ धरै सिर ऊपर, सुरति बाँस पर लावै ॥
जैसे भुवंगम चरत बनी में, ओस चाटने आवै ।
कभी चाटै कभी मनि तन चितवै, मनि तजि प्रान गँवावै ॥

जैसे कामिनि भरत कूप जल, कर छोड़े बतरावै ।
अपना रँग सखियन सँग राचै, सुरति डोर पर लावै ॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, अपनी काया जरावै ।
मातु पिता सब कुटुँब तियागै, सुरत पिया पर लावै ॥
धूप-दीप नैवेद अरगजा, ज्ञान की आरत लावै ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, फेर जनम नहिं पावै ॥

(३९)

हमरे सत्तनाम धन खेती ।टेक॥
मन कै बैल सुरत हरवाहा, जब चाहै तब जोती ॥१॥
सत्तनाम का बीज बोवाया, उपजै हीरा मोती ॥२॥
उन खेतन में नफा बहुत है, संतन लूटा सेंती ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, उलटि पलटि नर जोती ॥४॥

(४०)

कर साहिब से प्रीत रे मन, कर साहिब से प्रीत ।टेक॥
ऐसा समय बहुरि नहिं पैहौ, जैहै औसर बीत ।
तन सुन्दर छबि देख न भूलो, यह बारू की भीत ॥१॥
सुख सम्पति सुपने की बतियाँ, जैसे तृन पर सीत ।
जाही कर्म परम पद पावै, सोई कर्म करु मीत ॥२॥
सरन आये सो सबहि उबारैं, यहि साहिब की रीत ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, चलिहौ भवजल जीत ॥३॥

(४१)

झीनी झीनी बीनी चदरिया॥ टेक॥
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ।
इँगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया ॥१॥
अष्ट कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ।
साँईं को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया ॥२॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीन्हीं चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया ॥३॥

(४२)

घूँघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे ।टेक॥
घट-घट में वहि साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे ॥
धन जोबन का गर्ब न कीजै, झूठा पँचरँग चोल रे ॥

सुन्न महल में दियना बारि ले, आसा से मत डोल रे ॥
जोग जुगत से रंगमहल में, पिय पाये अनमोल रे ॥
कहै कबीर अनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ॥

(४३)

मेरी सुरत सुहागिनि जाग री ।टेक॥
का तुम सोवत मोह नींद में, उठिके भजनियाँ में लाग री ।
चित से सब्द सुनो सरवन दै, उठत मधुर धुन राग री ॥१॥
दोउ कर जोड़ि सीस चरनन दै, भक्ति अचल बर माँग री ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, जगत पीठ दै भाग री ॥२॥

(४४)

दुविधा को करि दूर, धनी को सेव रे ।
तेरी भौसागर में नाव, सुरत से खेव रे ॥१॥
सुमिरि सुमिरि गुरुनाम, चिरंजिव जीव रे ।
नाम खाँड़ बिनु मोल, घोलकर पीव रे ॥२॥
काया में नहिं नाम, गुरू के हेत का ।
नाम बिना बेकाम, मटीला खेत का ॥३॥
ऊँचे बैठि कचहरी, न्याव चूकावते ।
ते माटी मिलि गये, नजर नहिं आवते ॥४॥
तू माया धन धाम, देखि मत भूल रे ।
दिना चार का रंग, मिलैगा धूल रे ॥५॥
बार बार नर देह, नहीं यह बीर रे ।
चेत सके तो चेत, कहै कब्बीर रे ॥६॥

(४५)

परमातम गुरु निकट बिराजैं, जागु जागु मन मेरे ।टेक॥
धाइके सतगुरु चरनन लागौ, काल खड़ा सिर तेरे ।
छिन-छिन पल-पल सबहि सँघारै, बहु बिधि देत न देरे ॥
जुगन जुगन तोहि सोवत बीता, अजहुँ न जाग सबेरे ।
काम क्रोध मद लोभ फंद तजि, छिमा दया दिल हेरे ॥
भाई बन्धु कुटुम्ब कबीला, सब स्वारथ के चेरे ।
जब जम जालिम आनि पकरिहै, कोइ न संग चले रे ॥
भौसागर बाँकी है धारा, लख चौरासी फेरे ।
कहत कबीर सुनो हो साधो, जग से किये निबेरे ॥

(४६)

चली मैं खोज में पिय की । मिटी नहिं सोच यह जिय की ॥१॥
रहै नित पास ही मेरे । न पाऊँ यार को हेरे ॥२॥
बिकल चहुँ ओर को धाऊँ । तबहु नहिं कंत को पाऊँ ॥३॥
धरूँ केहि भाँति से धीरा । गयो गिरि हाथ से हीरा ॥४॥
कटी जब नैन की झाईं । लख्यो तब गगन में साईं ॥५॥
कबीरा सबद कहि भासा । नैन में यार को बासा ॥६॥

(४७)

सतगुरु चरण भजस मन मूरख, का जड़ जन्म गँवावस रे ।टेक॥
कर परतीत जपस उर अंतर, निशदिन ध्यान लगावस रे ।
द्वादश कोस बसत तेरा साहब, जहाँ सुरत ठहरावस रे ॥१॥
त्रिकुटी नदिया अगम पंथ जहँ, बिना मेह झर लावस रे ।
दामिनि दमकत अमृत बरसत, अजब रंग दरसावस रे ॥२॥
इंगला पिंगला सुखमन से धस, नभमंडल उठि धावस रे ।
लागी रहे सुरत की डोरी, सुन्न में शहर बसावस रे ॥३॥
बंकनाल उर चक्र सोधिके, मूलचक्र फहरावस रे ।
मकर तार के द्वार निरखि के, जहाँ पतंग उड़ावस रे ॥४॥
बिन सरहद अनहद जहँ बाजै, कौन सुर जहँ गावस रे ।
कहै कबीर सतगुरु पूरे से, जो परिचै सो पावस रे ॥५॥

(४८)

सूतल रहलुँ मैं नींद भरि हो, गुरु दिहले जगाइ ।टेक॥
चरन कँवल के अंजन हो, नैना लेलुँ लगाइ ।
जासे निंदिया न आवै हो, नहिं तन अलसाइ ॥१॥
गुरु के वचन निज सागर हो, चलु चलिहो नहाइ ।
जनम जनम के पपवा हो, छिन में डारब धुवाइ ॥२॥
वहि तन कै जग दीप कियो, स्नुत बतिया लगाइ ।
पाँच तत्त के तेल चुआये, ब्रह्म अग्नि जगाइ ॥३॥
सुमति गहनवाँ पहिरलौं हो, कुमति दिहलौं उतार ।
निर्गुण मँगिया सँवरलौं हो, निर्भय सेंदुर लाइ ॥४॥
प्रेम पियाला पियाइ के हो, गुरु दियो बौराइ ।
बिरह अगिन तन तलफै हो, जिय कछु न सुहाइ ॥५॥
ऊँच अटरिया चढ़ि बैठलुँ हो, जहँ काल न खाइ ।
कहै कबीर बिचारि के हो, जम देखि डेराइ ॥६॥

(४९)

तन की धन की कौन बड़ाई। देखत नैनों में माटी मिलाई॥
अपने खातर महल बनाया। आपहि जाकर जंगल सोया॥
हाड़ जले जैसे लकरि की मोली। बाल जले जैसे घास की पोली॥
कहत कबीरा सुन मेरे गुनिया। आप मुवे पिछे डूब गई दुनिया॥

(५०)

गगन घटा घहरानी साधो, गगन घटा घहरानी॥ टेक॥
पूरब दिसि से उठी बदरिया, रिमझिम बरसत पानी।
आपन आपन मेंड़ि सम्हारो, बह्यो जात यह पानी॥१॥
मन के बैल सुरति हरवाहा, जोत खेत निर्बानी।
दुबिधा दूब छोल करु बाहर, बोवो नाम की धानी॥२॥
जोग जुक्ति करि करु रखवारी, चर न जाय मृग धानी।
बाली झार कूटि घर लावै, सोई कुसल किसानी॥३॥
पाँच सखी मिलि कीन्ह रसोइयाँ, एक से एक सयानी।
दूनों थार बराबर परसे, जेवैं मुनि अरु ज्ञानी॥४॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्बानी।
जो या पद को परचा पावै, ताको नाम बिज्ञानी॥५॥

(५१)

नैहरवा हमकाँ न भावै॥टेक॥
साईं की नगरी परम अति सुंदर, जहँ कोइ जाय न आवै।
चाँद सुरज जहँ पवन न पानी, को सँदेस पहुँचावै॥
दरद यह साईं को सुनावै॥
आगे चलौं पंथ नहिं सूझै, पीछे दोष लगावै।
केहि बिधि ससुरे जाउँ मोरी सजनी, बिरहा जोर जनावै॥
विषै रस नाच नचावै॥
बिन सतगुरु अपने नहिं कोई, जो यह राह बतावै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सुपने न प्रीतम पावै॥
तपन यह जिय की बुझावै॥

(५२)

अखण्ड साहिब का नाम, और सब खण्ड है।
खण्डित मेरु सुमेरु, खण्ड ब्रह्मण्ड है॥

थिर न रहै धन धाम, सो जीवन धन्ध है।
लख चौरासी जीव, पड़े जम फन्द है॥
जाका गुरु से हेत, सोई निर्बन्ध है।
उन साधुन के संग, सदा आनंद है॥
चंचल मन थिर राखु, जबै भल रंग है।
तेरे निकट उलटि भरि पीव, सो अमृत गंग है॥
दया भाव चित राखु, भक्ति को अंग है।
कहै कबीर चित चेत, सो जगत पतंग है॥

(५३)

ऐसी नगरिया में किहि विधि रहना। नित उठ कलंक लगावै सहना॥
एकै कुवाँ पाँच पनिहारी। एकै लेजुर भरे नौ नारी॥
फट गया कुवाँ बिनस गई बारी। बिलग भई पाँचो पनिहारी॥
कहै कबीर नाम बिनु बेरा। उठ गया हाकिम लुट गया डेरा॥

(५४)

दरस दिवाना बावला अलमस्त फकीरा।
एक अकेला ह्वै रहा अस मत का धीरा॥
हिरदे में महबूब है, हरदम का प्याला।
पीवेगा कोई जौहरी गुरुमुख मतवाला॥
पियत पियाला प्रेम का सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै जस मैगल हाथी॥
बंधन काट मोह के बैठा निरसंका।
वाके नजर न आवता क्या राजा क्या रंका॥
धरती तो आसन किया, तम्बू असमाना।
चोला पहिरा खाक का रह पाक समाना॥
सेवक को सतगुरु मिलै कछु रहि न तबाही।
कह कबीर निज घर चलौ जहँ काल न जाही॥

(५५)

सखिया वा घर सबसे न्यारा, जहँ पूरन पुरुष हमारा॥टेक॥
जहँ नहिं सुख दुख साँच झूठ नहिं, पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन रैन चन्द नहिं सूरज, बिना जोति उँजियारा॥१॥
नहिं तहँ ज्ञान ध्यान नहिं जप तप, वेद कितेब न बानी।
करनी धरनी रहनी गहनी, ये सब जहाँ हिरानी॥२॥

धर नहिं अधर न बाहर भीतर, पिंड ब्रह्मण्ड कछु नाहीं ।
पाँच तत्त्व गुन तीन नहीं तहँ, साखी शब्द न ताहीं ॥३॥
मूल न फूल बेलि नहिं बीजा, बिना बृच्छ फल सोहै ।
ओअं सोहं अर्ध उर्ध नहिं, स्वासा लेख न कोहै ॥४॥
नहिं निर्गुन नहिं सर्गुन भाई, नहीं सूक्ष्म अस्थूलं ।
नहिं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के मूलं ॥५॥
जहाँ पुरुष तहवाँ कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना ।
हमरी सैन लखै जो कोई, पावै पद निरवाना ॥६॥

(५६)

कहौं उस देस की बतियाँ । जहाँ नहिं होत दिन रतियाँ ॥१॥
नहीं रबि चन्द्र औ तारा । नहीं उँजियार अँधियारा ॥२॥
नहीं तहँ पवन औ पानी । गये वहि देस जिन जानी ॥३॥
नहीं तहँ धरनि आकासा । करै कोइ सन्त तहँ बासा ॥४॥
उहाँ गम काल की नाहीं । तहाँ नहिं धूप औ छाहीं ॥५॥
न जोगी जोग से ध्यावै । न तपसी देह जरवावै ॥६॥
सहज में ध्यान से पावै । सुरति का खेल जेहि आवै ॥७॥
सोहंगम नाद नहिं भाई । न बाजै संख सहनाई ॥८॥
निहच्छर जाप तहँ जापै । उठत धुन सुन्न से आपै ॥९॥
मँदिर में दीप बहु बारी । नयन बिनु भई अँधियारी ॥१०॥
कबीरा देस है न्यारा । लखै कोइ राम का प्यारा ॥११॥

(५७)

जाके नाम न आवत हिये ॥ टेक॥
कहा भये नर कासी बसे से, का गंगा जल पिये ॥१॥
काह भये नर जटा बढ़ाये, का गुदरी के सिये ॥२॥
का रे भये कंठी के बाँधे, काह तिलक के दिये ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, नाहक ऐसे जिये ॥४॥

(५८)

अबधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।टेक॥
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै ।
बन के गये कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ॥१॥

घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ॥२॥
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत सों मेला करिकै, अनहद नाद बजावै ॥३॥
घर में बसत बस्तु भी घर है, घर ही बस्तु मिलावै ।
कहै कबीर सुनो हो अबधू, ज्यों का त्यों ठहरावै ॥४॥

(५९)

अपने घट दियना बारु रे ।टेक॥
नाम कै तेल सुरत कै बाती, ब्रह्म अगिन उद्गारु रे ।
जगमग जोत निहारु मंदिर में, तन मन धन सब वारु रे ॥१॥
झूठी जान जगत की आसा, बारम्बार बिसारु रे ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, आपन काज सँवारु रे ॥२॥

(६०)

मोरे जियरा बड़ा अँदेसवा, मुसाफिर जैहौ कौनी ओर ।टेक॥
मोह का सहर कहर नर नारी, दुइ फाटक घनघोर ।
कुमती नायक फाटक रोके, परिहौ कठिन झिंझोर ॥१॥
संसय नदी अगाड़ी बहती, बिषम धार जल जोर ।
क्या मनुवाँ तुम गाफिल सोवौ, इहवाँ मोर न तोर ॥२॥
निसिदिन प्रीति करो साहेब से, नाहिन कठिन कठोर ।
काम दिवाना क्रोध है राजा, बसैं पचीसो चोर ॥३॥
सत्त पुरुष इक बसैं पछिम दिसि, तासों करो निहोर ।
आवै दरद राह तोहि लावै, तब पैहौ निज ओर ॥४॥
उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो, पसरा मना बटोर ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, तब पैहौ निज ठौर ॥५॥

(६१)

जानता कोइ ख्याल ऐसा, जानता कोइ ख्याल ।टेक॥
धरती बेध पताले गयऊ, शेषनाग को वश करि लिएऊ ,
बाँसुरी बाजत सत की ताली, तासों भये सकल विस्तारी ,
कमल बीच पट ताल ।ऐसा०॥१॥
दिन को सोधि रैन मो लाओ, रैन के भीतर भानु चलाओ ,
भानु के भीतर ससि के वासा, ससि के भीतर दो परकासा ,
बोलता सारंग ताल ।ऐसा०॥२॥

पूरब सोधि पछिम दिसि लावै, अर्ध उर्ध के भेद बतावै ,
सिला नाथि दक्खिन को धाओ, उत्तर दिसा को सुमरन चाखो ,
चारो दिसा का हाल ।ऐसा०॥३॥
नौ को सोधि सिढ़ी सिढ़ी लाओ, एक बेर सुमेर चढ़ाओ ,
मेरुदंड पर आसन मारो, सन्मुख आगे प्रेम दृढ़ाओ ,
गगन गुफा का हाल ।ऐसा०॥४॥
गगन गुफा में अति उजियाला, अजपा जाप जपै बिनु माला ,
बीना संख सहनाई बाजै, अलख निरंजन चहुँ दिसि गाजै ,
हीरा बरत मोहाल ।ऐसा०॥५॥
सब्द ही दिल दिल बिच राखै, दया धर्म सन्तोष दृढ़ावै ,
कहै कबीर कोइ बिरला पावै, जाको सतगुरु आप लखावै ,
चढ़त हमारो लाल ।ऐसा०॥६॥

(६२)

विमल विमल अनहद धुनि बाजै, सुनत बने जाको ध्यान लगे ।टेक॥
सिंगी नाद संख धुनि बाजै, अबुझा मन जहाँ केलि करे ।
दह की मछली गगन चढ़ि गाजै, बरसत अमि रस ताल भरे ॥१॥
पछिम दिसा को चलली बिरहिन, पाँच रतन लिये थार भरे ।
अष्ट कमल द्वादस के भीतर, सो मिलने की चाह करे ॥२॥
बारह मास बुन्द जहाँ बरषै, रैन दिवस वहाँ लखि न परे ।
बिरला समुझि परे वहि गलियन, बहुरि न प्रानी देह धरे ॥३॥
काया पैसि करम सब नासै, जरा मरन के संसे गये ।
निरंकार निर्गुन अविनासी, तीनि लोक में जोति बरे ॥४॥
कहै कबीर जिनको सतगुरु साहब, जन्म जन्म के कष्ट हरे ।
धन्य भाग्य जिनकी अटल साहिबी, नाम बिना नर भटकि मरे ॥५॥

(६३)

मन तू मानत क्यों न मना रे ।
कौन कहन को कौन सुनन को, दूजा कौन जना रे ॥१॥
दर्पन में प्रतिबिम्ब जो भासै, आप चहूँ दिसि सोई ।
दुबिधा मिटै एक जब होवै, तौ लखि पावै कोई ॥२॥
जैसे जल तें हेम बनतु है, हेम धूम जल होई ।
तैसे या तत वाहू तत सों, फिर यह अरु वह सोई ॥३॥

जो समुझै तो खरी कहन है, ना समुझै तो खोटी ।
कहै कबीर दोऊ पख त्यागै, ताकी मति है मोटी ॥४॥

(६४)

जो कोइ निरगुन दरसन पावै ॥ टेक ॥
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मन्त्र गहि लावै ।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै ॥१॥
बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमिरस अजर चुवावै ।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैन न पलक डुलावै ॥२॥
गगन मँदिल में फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै ।
इँगला पिंगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै ॥३॥
सुन्न महल में पुरुष बिराजै, जहाँ अमर घर छावै ।
कहै कबीर सतगुरु बिन चीन्हे, कैसे वह घर पावै ॥४॥

(६५)

कोई चतुर न पावे पार, नगरिया बाबरी ।टेक॥
लाल लाल जो सब कोइ कहै, सबकी गाँठी लाल ।
गाँठि खोलि के परखै नाहीं, तासे भयो कंगाल ॥१॥
काया बड़े समुद्र केरो, थाह न पावै कोइ ।
मन मरि जैहैं डूबि के हो, मानिक परखै सोइ ॥२॥
ऊँचा महल अगमपुर जहवाँ, सन्त समागम होइ ।
जो कोइ पहुँचे वही नगरिया, आवागमन न होइ ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, का खोजो बड़ी दूर ।
जो कोइ खोजै यही नगरिया, सो पावै भरपूर ॥४॥

(६६)

लोका मति का भोरा रे ।
जौं कासी तन तजे कबीरा, रामहिं कौन निहोरा रे ॥१॥
तब हम ऐसे अब हम ऐसे, यही जनम का लाहा ।
जौं जल में जल पैस न निकसे, यौं ढुरि मिला जुलाहा ॥२॥
राम भगति में जाको हित चित, वाको अचरज काहा ।
गुरु प्रसाद साधु की संगति, जग जीते जात जुलाहा ॥३॥
कहै कबीर सुनो हो संतो, भरम पड़ो जनि कोई ।
जस कासी तस मगहा ऊसर, हृदय राम जौं होई ॥४॥

(६७)

जियत न मार मुआ मत लैयो, मास बिना मत ऐयो रे ।टेक॥
परली पार इक बेल का बिरवा, वाके पात नहीं है रे ।
होत पात चुगि जात मिरगवा, मृग के सीस नहीं है रे ॥१॥
धनुष बान ले चढ़ा पारधी, धनुआ के परच नहीं है रे ।
सरसर बान तकातक मारै, मिरगा के घाव नहीं है रे ॥२॥
उर बिनु खुर बिनु चरन चोंच बिनु, उड़न पंख नहिं जाके रे ।
जो कोइ हंसा मारि लियावै, रक्त मांस नहिं ताके रे ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद अतिहि दुहेला रे ।
जो या पद को अर्थ बतावै, सोई गुरू हम चेला रे ॥४॥

(६८)

रस गगन गुफा में अजर झरै ।टेक॥
बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै ॥१॥
बिना ताल जहँ कमल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केल करै ॥२॥
बिन चन्दा उँजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै ॥३॥
दसवें द्वारे ताड़ी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै ॥४॥
काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै ॥५॥
जुगन जुगन की तृषा बुझानी, कर्म भर्म अघ ब्याधि टरै ॥६॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अमर होय कबहूँ न मरै ॥७॥

(६९)

कोई देखो लोगो नैया बिच नदिया डूबी जाय ।टेक॥
चिंउटी चलल अपन ससुररिया, नौ मन कजला लगाय ।
हाथी मारि बगल तर लीन्हा, ऊँटवा के लियो लटकाय ॥१॥
एक चिंउटी के मरने से, नौ सौ गिद्ध अघाय ।
ताहू में कुछ बाकी रह गये, तापर चिल्ह मँडराय ॥२॥
एक चिंउटी के थूके से, बन गये नदी हजार ।
पापी नरकी पार उतर गये, धर्मी बूड़े मझधार ॥३॥
एक आश्चर्य हम ऐसा देखा, गदहा के दो सींग ।
चिंउटी गला में रस्सी बाँधि के, खैंचत अर्जुन भीम ॥४॥
एक आश्चर्य हम ऐसा देखा, बन्दर दूहे गाय ।
दूध दही सब खाय खाय के, माखन बनारस जाय ॥५॥

कहै कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निरबानी ।
जो कोइ याको अर्थ लगावै, पहुँचे मूल ठेकानी ॥६॥

(७०)

ठगिनी क्या नैना चमकावे, कबिरा तेरे हाथ न आवे ।टेक॥
कद्दू काटि मृदंग बनाया, नींबू काटि मजीरा ।
सात तरोई मंगल गावे, नाचे बालम खीरा ॥१॥
रूपा पहिर के रूप दिखावे, सोना पहिर तरसावै ।
गले डाल तुलसी की माला, तीन लोक भरमावै ॥२॥
भैंस पद्मिनी आसिक चूहा, मेढ़क ताल लगावै ।
छप्पर चढ़कर गदहा नाचे, ऊँट विष्णु पद गावै ॥३॥
आम डारि चढ़ि कछुआ तोड़ै, गिलहरि चुन चुन लावै ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, बगुला भोग लगावै ॥४॥

(७१)

कोइ सुनता है गुरु ज्ञानी, गगन में आवाज होती झीनी ।टेक॥
पहिले होता नाद बिन्दु से, फेर जिमाया पानी ।
सब घट पूरन पूर रहा है, आदि पुरुष निर्बानी ॥१॥
जो तन पाया पटा लिखाया, त्रिस्ना नहीं बुझानी ।
अमृत छोड़ि बिषय रस चाखा, उलटी फाँस फँसानी ॥२॥
ओअं सोहं बाजा बाजै, त्रिकुटी सुरत समानी ।
इड़ा पिंगला सुषमन सोधे, सुन्न धुजा फहरानी ॥३॥
दीद बरदीद हम नजरों देखा, अजरा अमर निसानी ।
कह कबीर सुनो भाइ साधो, यही आदि की बानी ॥४॥

(७२)

साईं ने पठाया, न्यामत हू मत लाना ।टेक॥
पहली भिक्षा अन्न का लाना, गाँव नगर के पास न जाना ।
अमीर-गरीब छोड़ के लाना, लाना झोली भर के ॥१॥
दूजी भिक्षा मास् का लाना, जीव-जन्तु के पास न जाना ।
जिन्दा मुर्दा छोड़ के लाना, लाना हण्डी भर के ॥२॥
तीजी भिक्षा जल का लाना, कुआँ बावरी पास न जाना ।
ताल-तलैया छोड़ के लाना, लाना तुम्बी भर के ॥३॥
चौथी भिक्षा लकड़ी लाना, रूख वृक्ष के पास न जाना ।
गीली-सूखी छोड़ के लाना, लाना गट्ठर भर के ॥४॥

कहै कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निरबाना।
जो या पद को अर्थ लगावै, सोई चतुर सुजाना ॥५॥

(७३)

अँखियाँ लागि रहन दो साधो, हिरदे नाम सम्हारा।
रीझै बूझै साहिब तेरा, कौन पड़ा है द्वारा ॥१॥
जम जालिम के सब डर मिटिगे, जा दिन दृष्टि निहारा।
जब सतगुरु ने किरपा कीन्ही, लीन्ह्यो आप उबारा ॥२॥
लख चौरासी बंधन छूटे, सदा रहै गुरु संगी।
प्रेम पियाला हरदम पीवै, सदा मस्त बौरंगी ॥३॥
जब लग बस्तु पिछाने नाहीं, तब लग झूठी आसा।
झिलमिलि जोति लखै कोइ गुरुमुख, उनमुनि घर के बासा ॥४॥
सबको दृष्टि पड़ै अबिनासी, बिरला संत पिछानै।
कहै कबीर यह भर्म किवाड़ी, जो खोलै सो जानै ॥५॥

(७४)

मुरसिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सफेद तिलों बिच तारा, अविगत अलख रबी है ।टेक॥
आँखी मद्धे पाँखी चमके, पाँखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुर्बीन लगावे, उतरै भौजल पारा ॥१॥
सुन्न सहर में बास हमारा, तहँ सरबंगी जावै।
साहेब कबीर सदा के संगी, सब्द महल ले आवै ॥२॥

(७५)

भाइ रे नयन रसिक जो जागे।
पारब्रह्म अविगत अविनासी, कैसहुँ के मन लावै ॥१॥
अमली लोग खुमारी तृष्णा, कतहुँ संतोष न पावै।
काम क्रोध दोनों मतवाले, माया भरि भरि आवै ॥२॥
ब्रह्म-कलाल चढ़ाइन भाठी, ले इन्द्री रस चावै।
संगहि पोच जु ज्ञान पुकारे, चतुरा हाइ सु पावै ॥३॥
संकर सोच पोच यह कलि महँ, बहुतक व्याधि सरीरा।
जहाँ धीर-गंभीर अति निश्चल, तहँ उठि मिलहु कबीरा ॥४॥

(७६)

संतो जागत नींद न कीजै।
काल न खाय कल्प नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै ॥१॥

उलटि गंग समुद्रहिं सोखै, ससि और सूरहि ग्रासै।
नवग्रह मारि रोगिया बैठे, जल महँ बिम्ब प्रकासै ॥२॥
बिनु चरनन को चहुँ दिशि धावै, बिनु लोचन जग सूझै।
ससकहिं उलटि सिंह को ग्रासै, ई अचरज को बूझै ॥३॥
औंधे घड़ा नहीं जल बूड़ै, सूधे सो जल भरिया।
जिहि कारन भिन्न भिन्न करै, गुरु परसादे तरिया ॥४॥
पैठि गुफा महँ सब जग देखै, बाहर कुछ नहिं सूझै।
उलटा बान पारिधिहि लागै, सूरा होय सो बूझै ॥५॥
गायन कहै कबहूँ नहिं गावै, अनबोला नित गावै।
नटवत बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेत बढ़ावै ॥६॥
कथनी वन्दनि निज कै जोहै, ई सब अकथ कहानी।
धरती उलटि अकासहिं बेधे, ई पुरुषन की बानी ॥७॥
बिना पिया लेहिं अमृत अँचव, नदी नीर भरि राखै।
कहहिं कबीर सो युग-युग जीवै, राम सुधा-रस चाखै ॥८॥

(७७)

मन तू थकत थकत थकि जाई।
बिन थाके तेरे काज न सरिहैं, फिर पाछे पछिताई ॥१॥
जब लग तोकर जीव रहतु है, तब लग परदा भाई।
टूटि जाय ओट तिनुका की, रसक रहै ठहराई ॥२॥
सकल तेज तज होय नपुंसक, यहि मति सुन ले मेरी।
जीवत मृतक दसा बिचारै, पावै बस्तु घनेरी ॥३॥
याके परे और कछु नाहीं, यह मति सबसे पूरा।
कहै कबीर मार मन चंचल, हो रहु जैसे धूरा ॥४॥

(७८)

संतो आवै जाय सो माया।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके, ना कहुँ गया न आया ॥१॥
क्या मकसूद मच्छ कछ होना, संखासुर न सँघारा।
है दयाल द्रोह नहिं वाको, कहहु कौन को मारा ॥२॥
नहिं वै कर्त्ता ब्राह कहायो, धरनि धरो नहिं भारा।
इ सब काम साहिब के नाहीं, झूठ कहै संसारा ॥३॥
खम्भ फोरि जो बाहर होई, ताहि पतिज सब कोई।
हिरनाकस नख उदर बिदारे, सो नहिं कर्त्ता होई ॥४॥

बावन ह्वै नहिं बलि को जाँच्यो, जो जाँचे सो माया ।
बिना विवेक सकल जग भरमे, माया जग भरमाया ॥५॥
परसुराम ह्वै छत्रि न मारा, ई छल माया कीन्हा ।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं जान्यो, जीवन मिथ्या दीन्हा ॥६॥
सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पषाण नहिं बन्धा ।
वै रघुनाथ एक को सुमिरै, जो सुमिरै सो अन्धा ॥७॥
गोपी ग्वाल न गोकुल आयो, कर ते कंस न मारा ।
मेहरबान सबन के साहिब, नहिं जीता नहिं हारा ॥८॥
नहिं वै कर्त्ता बुद्ध कहायो, नहिं असुरन को मारा ।
ज्ञानहीन करता सब भरमे, माया जग संहारा ॥९॥
नहिं वै कर्त्ता भये कलंकी, नहीं कलिंगहि मारा ।
ई छल-बल सब माया कीन्हा, यत्त सत्त सब टारा ॥१०॥
दस अवतार ईश्वरी माया, कर्त्ता कै जिन पूजा ।
कहहि कबीर सुनो हो संतो, उपजै खपै सो दूजा ॥११॥

(७९)

डर लागै औ हाँसी आवै, अजब जमाना आया रे ॥
धन-दौलत ले माल खजाना, बेस्या नाच नचाया रे ।
मुट्ठी अन्न साधु माँगे, कहैं नाज नहीं आया रे ॥
कथा होय तहँ स्त्रोता सावें, वक्ता मूँड पचाया रे ।
होय जहाँ कहिं स्वांग-तमासा, तनिक न नींद सताया रे ॥
भांग-तमाखू सुलफा गाँजा, सूखा खूब उड़ाया रे ।
गुरु चरणामृत नेम न धारैं, मधुवा चाखन आया रे ॥
उलटी चलन चली दुनिया में, ताते जिय घबराया रे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, का पाछे पछताया रे ॥

(८०)

बाबू ऐसो है संसार तिहारो, है यह कलि व्यवहारा ।
को अब अनख सहै प्रतिदिन, को नाहिन रहन हमारा ॥
सुमति सुभाव सबै कोई जानै, हृदया तत्त न बूझै ।
निरजीव आगे सरजीव थापे, लोचन कछुव न सूझै ॥
तजि अमरत विष काहै अँचवूँ, गाँठी बाँधू खोटा ।
चोरन को दिय पाट सिंहासन, साहुहि कीन्हों ओटा ॥

कह कबीर झूठो मिली झूठा, ठग ही ठग ब्यवहारा ।
तीन लोक भरपूर रह्यो है, नाहीं है पतियारा ॥

(८१)

गगन की ओट निसाना है ।
दहिने सूर चन्द्रमा बायें, तिनके बीच छिपाना है ॥१॥
तन की कमान सुरत का रोदा, सब्द बान ले ताना है ॥२॥
मारत बान बिँधा तन ही तन, सतगुरु का परवाना है ॥३॥
मार्‌यो बान घाव नहिं तन में, जिन लागा तिन जाना है ॥४॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है ॥५॥

(८२)

भक्ती का मारग झीना रे ।टेक॥
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे ॥१॥
साधुन के सतसंग में, रहे निसिदिन भीना रे ॥२॥
सब्द में सुर्त ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे ॥३॥
मान मनी को यों तजे, जस तेली पीना रे ॥४॥
दया छिमा संतोष गहि, रहे अति आधीना रे ॥५॥
परमारथ में देत सिर, कछु बिलँब न कीना रे ॥६॥
कहै कबीर मत भक्ति का, परगट कह दीना रे ॥७॥

(८३)

साधो सब्द साधना कीजै ।
जेहिं सब्द तें प्रगट भये सब, सोई सब्द गहि लीजै ।टेक॥
सब्दहि गुरू सब्द सुनि सिष भे, सब्द सो बिरला बूझै ।
सोइ सिष्य सोइ गुरू महातम, जेहिं अन्तरगति सूझै ॥१॥
सब्दै बेद पुरान कहत है, सब्दै सब ठहरावै ।
सब्दै सुर मुनि सन्त कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै ॥२॥
सब्दै सुनि सुनि भेष धरत हैं, सब्द कहै अनुरागी ।
षट दरसन सब सब्द कहत है, सब्द कहै बैरागी ॥३॥
सब्दै माया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा ।
कहै कबीर जहँ सब्द होत है, तवन भेद है न्यारा ॥४॥

(८४)

बाबा जोगी एक अकेला, जाकै तीर्थ व्रत न मेला ।टेक॥
झोली पत्र बिभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै ।
माँगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अँगना फिरि आवै ॥१॥

पाँच जना की जमाति चलावै, तास गुरू मैं चेला ।
कहै कबीर उनि देसि सिधाये, बहुरि न इहि जग मेला ॥२॥

(८५)

साधो ! यह तन ठाठ तँबूरे का ॥टेक॥
पाँच तत्त्व का बना तँबूरा, तार लगा नव तूरे का ॥१॥
ऐंचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजूरे का ॥२॥
टूटे तार बिखरि गइ खूँटी, हो गया धूरम धूरे का ॥३॥
या देही का गर्ब न कीजै, उड़ि गया हंस तँबूरे का ॥४॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अगम पंथ कोइ सूरे का ॥५॥

(८६)

राम तेरी माया दुन्द मचावै ।
गति मति वाकी समझि परै नहिं, सुर नर मुनिहि नचावै ॥
का सेमर के साख बढ़े ये, फूल अनूपम बानी ।
केतिक चातक लागि रहे हैं, चाखत रुवा उड़ानी ॥
कहा खजूर बड़ाई तेरी, फल कोई नहिं पावै ।
ग्रीषम ऋतु जब आइ तुलानी, छाया काम न आवै ॥
अपना चतुर और को सिखवै, कामिनि कनक सयानी ।
कहै कबीर सुनो हो संतो, राम चरन रति मानी ॥

(८७)

अपनपौ आपुहि तें बिसरो ॥टेक॥
जैसे स्वान काँच मन्दिर में, भ्रम से भूँकि मरो ॥१॥
ज्यों केहरि बपु निरख कूप जल, प्रतिमा देखि गिरो ॥२॥
वैसे ही गज फटिक सिला में, दसनन आनि अड़ो ॥३॥
मरकट मूठि स्वाद नहिं बहुरै, घर घर रटत फिरो ॥४॥
कह कबीर नलनी के सुगना, तोहि कवन पकरो ॥५॥

(८८)

राम नाम भजु राम नाम भजु, चेति देखु मन माहीं हो ।
लक्ष करोरि जोरि धन गाड़े, चलत डोलावत बाँही हो ॥१॥
दादा बाबा औ परपाजा, जिन्हके यह भुइँ भाँड़े हो ।
आँधर भये हियहु की फूटी, तिन्ह काहे सब छाँड़े हो ॥२॥
ई संसार असार को धंधा, अंतकाल कोई नाहीं हो ।
उपजत बिनसत बार न लागे, ज्यों बादर की छाँही हो ॥३॥

नाता-गोता कुल-कुटुम्ब सब, इन्ह कर कौन बड़ाई हो ।
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़ी सब चतुराई हो ॥४॥

(८९)

अब कहाँ चलेउ मीता, उठहु न करहु घरहु की चिंता ॥टेक॥
खीर खाँड़ घृत पिण्ड सँवारा, सो तन लै बाहर कै डारा ।
जो शिर रचि-रचि बाँधहुँ पागा, सो शिर रतन बिडारत कागा ॥१॥
हाड़ जरे जस जंगल लकड़ी, केश जरै जस घास की पूली ।
आवत संग न जात सँगाती, काह भये दल बाँधत हाथी ॥२॥
माया के रस लेइ न पाया, अंतर यम विलारी होइ धाया ।
कहहिं कबीर नर अजहुँ न जागा, यम का मुदगर माँझ शिर लागा ॥३॥

(९०)

चलहु का टेढ़ो-टेढ़ो-टेढ़ो ।
दशहूँ द्वार नरक भरि बूड़े, तूँ गन्धी को बेरो ॥टेक॥
फूटै नैन हृदय नहिं सूझे, मति एकौ नहिं जानी ।
काम क्रोध तृष्णा के माते, बूड़ि मुये बिनु पानी ॥१॥
जो जारे तन भस्म होय धुरि, गाड़े किरमिटी खाई ।
सीकर श्वान काग का भोजन, तन की इहै बड़ाई ॥२॥
चेति न देख मुग्ध नर बौरे, तोहि ते काल न दूरी ।
कोटिन यतन करो यह तन की, अंत अवस्था धूरी ॥३॥
बालू के घरवा में बैठे, चेतत नाहिं अयाना ।
कहहिं कबीर एक राम भजन बिनु, बूड़े बहुत सयाना ॥४॥

(९१)

फिरहु का फूले-फूले-फूले ।
जब दश मास ऊर्ध्व मुख होते, सो दिन काहेक भूले ॥१॥
ज्यों माखी सहते नहिं बिहुरे, सोचि-सोचि धन कीन्हा ।
मुये पीछे लेहु-लेहु कों सब, भूत रहनि कस दीन्हा ॥२॥
देहरि लों बर नारि संग है, आगे संग सुहेला ।
मृतक थान लों संग खटोला, फिर पुनि हंस अकेला ॥३॥
जारे देह भस्म होय जाई, गाड़े माटी खाई ।
काँचे कुम्भ उदक ज्यों भरिया, तन की इहै बड़ाई ॥४॥
राम न रमसि मोह के माते, परेहु काल वश कूवा ।
कहहिं कबीर नर आप बँधायो, ज्यों ललनी भ्रम सूवा ॥५॥

(९२)

पानी में मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी ।टेक॥
आतम ज्ञान बिना नर भटके, कोइ मथुरा कोइ कासी ।
जैसे मृगा नाभि कस्तूरी, बन बन फिरत उदासी ॥१॥
जल बीच कमल कमल बिच कलियां, तेहि पर भंवर निवासी ।
सो मन वश त्रैलोक भयो सब, यती सती संन्यासी ॥२॥
जाके ध्यान धरत विधि हरिहर, मुनिजन सहस अठासी ।
सो तेरे घट माहिं विराजे, परम पुरुष अविनाशी ॥३॥
है हाजिर तेहि दूर बतावै, दूर की बात निरासी ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, बिन गुरु मरम न जासी ॥४॥

(९३)

साधो सहज समाधि भली ।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली ॥
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा ।
जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा ॥
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खावँ पियौं सो पूजा ।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा ॥
आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं ।
खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि, सुंदर रूप निहारौं ॥
सब्द निरंतर से मन लागा, मलिन बासना भागी ।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी ॥
कहै कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई ।
दुख सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई ॥

(९४)

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ।टेक॥
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार बार वाको क्यों खोले ।
हलकी थी जब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले ॥१॥
सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले ।
हंसा पाये मान सरोवर, ताल तलैया क्यों डोले ॥२॥
तेरा साहब है घट माहीं, बाहर नैना क्यों खोले ।
साहेब कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गये तिल ओले ॥३॥

(९५)

पंडित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी ॥
सहज समाना घट-घट बोलै, वाके चरित अनूपा ।
वाको नाम काह कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा ॥
तैं मैं क्या करसी नर बौरे, क्या मेरा क्या तेरा ।
राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कहुँ धौं काहि निहोरा ॥
वेद-पुरान कितेब कुराना, नाना भाँति बखाना ।
हिन्दू तुरुक जैनि औ योगी, ये कल काहु न जाना ॥
छौ दर्शन में जो परवाना, तासु नाम मनमाना ।
कहहिं कबीर हमहीं पै बौरे, ई सब खलक सयाना ॥

(९६)

ऐसो भरम बिगुर्चन भारी ।
वेद-कितेब दीन औ दोजख, को पुरुषा को नाहीं ॥
माटी का घर साज बनाया, नादे बिन्द समाना ।
घर विनसे क्या नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना ॥
एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा ।
एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा ॥
रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शंकर, सतोगुण हरि होई ।
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई ॥

(९७)

अल्लाह राम जियो तेरी नाईं, जिन्ह पर मेहर होहु तुम साईं ।टेक॥
क्या मुण्डी भूईं शिर नाये, क्या जल देह नहाये ।
खून करे मिस्कीन कहाये, अवगुण रहे छिपाये ॥१॥
क्या वजू जप मंजन कीये, क्या महजिद शिर नाये ।
हृदया कपट निमाज गुजारे, क्या हज मक्के जाये ॥२॥
हिन्दू बरत एकादशी चौबिस, तीस रोजा मुसलमाना ।
ग्यारह मास कहो किन टारे, एक महीना आना ॥३॥
जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलुक केहि केरा ।
तीरथ मूरत राम निवासी, दुइमा किनहुँ न हेरा ॥४॥
पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा ।
दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा ॥५॥

वेद-कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न बिचारे।
सब घर एक-एक कै लेखे, भय दूजा के मारे ॥६॥
जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा ॥७॥

(९८)

वारी जाऊँ मैं सतगुरु के, मेरा किया भरम सब दूर ।टेक॥
चंद चढ़ा कुल आलम देखै, मैं देखूँ भ्रम दूर।
हुआ प्रकास आस गइ दूजी, उगिया निर्मल नूर ॥१॥
माया मोह तिमिर सब नासा, पाया हाल हजूर।
बिषय बिकार लार है जेता, जारि किया सब धूर ॥२॥
पिया पियाला सुधि बुधि बिसरी, हो गया चकनाचूर।
हूआ अमर मरै नहिं कबहूँ, पाया जीवन मूर ॥३॥
बंधन कटा छूटिया जम से, किया दरस मंजूर।
ममता गई भई उर समता, दुख सुख डारा दूर ॥४॥
समझे बनै कहे नहिं आवै, भयो आनँद भरपूर।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बजिया निरमल तूर ॥५॥

(९९)

मत कर मोह तू, हरि भजन को मान रे।
नयन दिये दरसन करने को, कान दिये सुन ज्ञान रे ॥
बदन दिया हरि गुन गाने को, हाथ दिये कर दान रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कंचन निपजत खान रे ॥

(१००)

जाग पियारी अब का सोवै। रैनि गई दिन काहे को खोवै ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया। तैं बौरी सब सोइ गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तु मूरख नारी। कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ॥
तैं बौरी बौरापन कीन्ह्यो। भर जोबन पिय अपन न चीन्ह्यो ॥
जागु देख पिय सेज न तेरे। तोहि छाड़ि उठि गये सबेरे ॥
कहै कबीर सोई धन जागै। सब्द बान उर अंतर लागै ॥

(१०१)

गुरु दियना बारु रे, यह अंध कूप संसार ।टेक॥
माया के रँग रची सब दुनियाँ, नहिं सूझ परत करतार।
पुरुष पुरान बसै घट भीतर, तिनुका ओट पहार ॥

मृग के नाभि बसत कस्तूरी, सूँघत भ्रमत उजार।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, छूटि जात भ्रम जार ॥

(१०२)

यह कलि ना कोइ अपनो, का सँग बोलिये रे।
ज्यों मैदानी रूख, अकेला डोलिये रे ॥
माया के मद माते, सुनै नहिं कोई रे।
क्या राजा क्या रंक, बियाकुल दोई रे ॥
माया का बिस्तार, रहै नहिं कोई रे।
ज्यों पुरइनि पर नीर, थीर नहिं होई रे ॥
बिष बोयो संसार, अमृत कस पावै रे।
पुरब जन्म तेरो कीन्ह, दोस कित लावै रे ॥
मन आवै मन जावै, मनहिं बटोरो रे।
मन बुड़वै मन तारै, मनहिं निहोरो रे ॥
कहै कबीर यह मंगल, मन समझावो रे।
समझि के कहों पयाम, बहुरि नहिं आवो रे ॥

(१०३)

साध संगत गुरुदेव, उहाँ चलि जाइये।
भाव भक्ति उपदेस, तहाँ तें पाइये ॥
अस संगत जरि जाव, न चरचा नाम की।
दूलह बिना बरात, कहो किस काम की ॥
दुविधा को करि दूर, सतगुरू ध्याइये।
आन देव की सेव, न चित्त लगाइये ॥
आन देव की सेव, भली नहिं जीव को।
कहै कबीर बिचारि, न पावै पीव को ॥

(१०४)

करिके कौल करार, आया था भजन को।
अब तू मुरख गँवार, कुँवे लगा परन को ॥
पर्‌यो माया के जाल, रह्यो मन फूलि के।
गर्भबास की त्रास, रह्यो नर भूलि के ॥
ऊँची अटरिया पौल, चढ़ौ चढ़ि गिरि परौ।
सतगुरु बुधि लइ नाहिं, पार कैसे परौ ॥

सतगुरु होहु दयाल, बाँह मेरी गहौ ।
बूड़त लेव उबारि, पार अब के करौ ॥
दास कबीर सिर नाय, कहै कर जोरि के ।
इक साहिब से जोरि, सबन से तोरि के ॥

(१०५)

नारद साध सों अंतर नाहीं ।
जो कोइ साध सों अंतर राखै, सो नर नरकै जाहीं ।टेक॥
जागै साध तो मैं हूँ जागूँ, सोवै साध तो सोऊँ ।
जो कोइ मेरे साध दुखावै, जरा मूल से खोऊँ ॥
जहाँ साध मेरो जस गावै, तहाँ करौं मैं बासा ।
साध चलै आगे उठ धाऊँ, मोहिं साध की आसा ॥
माया मेरी अर्ध-सरीरी, औ भक्तन की दासी ।
अठसठ तीरथ साध के चरनन, कोटि गया औ कासी ॥
अंतरध्यान नाम निज केरा, जिन भजिया तिन पाई ।
कहै कबीर साध की महिमा, हरि अपने मुख गाई ॥

(१०६)

ऐसो जनम नहिं पैबे रे मन तू , ऐसो जनम नहिं पैबे रे ।टेक॥
सूकर श्वान चराचर पशुआ, जनम जनम दुख पैबे रे ।
सूखी तृण आगे धरि देतौ, घास-भुसा नहिं पैबे रे ॥
चार पैर दो सिंघ गुँगा मुख, कैसे के हरिगुण गैबे रे ।
खैंचि के रास खुँटा में बाँधतौ, पर मुख देखि सिरैबे रे ॥
भारी बोझ तोरा पीठि पर लादतौ, पंथ चलत पछतैबे रे ।
हानि के हूरा कोखा में मारतौ, हुँकरि-हुँकरि मरि जैबे रे ॥
धन संपति डाकू ले जैतौ, संत सेवा कब करबे रे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, चलहि के बेरि पछतैबे रे ॥

(१०७)

मन तू क्यों भूला रे भाई, तेरी सुधि बुधि कहाँ हिराई ।टेक॥
जैसे पंछी रैन बसेरा, बसै बृच्छ पर आई ।
भोर भये सब आपु आपु को, जहाँ तहाँ उड़ि जाई ॥
सुपने में तोहि राज मिल्यो है, हाकिम हुकुम दुहाई ।
जागि पर्‌यो तब लाव न लसकर, पलक खुले सुधि पाई ॥

मातु पिता बन्धू सुत तिरिया, ना कोइ सगो सगाई ।
यह तो सब स्वारथ के संगी, झूठी लोक बड़ाई ॥
सागर माहीं लहर उठतु हैं, गनिता गनी न जाई ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, दरिया लहर समाई ॥

(१०८)

सतगुरु मोरी चूक सँभारो ।
हौं अधीन हीन मति मोरी, चरनन तें जिन टारो ।टेक॥
मन कठोर कछु कहा न माने, बहु वाको कहि हारो ।
तुम हीं ते सब होत गुसाँईं, याको बेग सँवारो ॥१॥
अब दीजे संगत सतगुर की, जातें होय निस्तारो ।
और सकल संगी सब बिसरैं, होउ तुम एक पियारो ॥२॥
कर देख्यो हित सारे जग से, कोइ न मिल्यो पुनि भारो ।
कहै कबीर सुनो प्रभु मेरे, भवसागर से तारो ॥३॥

(१०९)

हमारे मन कब भजिहो गुरुनाम ।टेक॥
बालापन जनमत हीं खोयो, ज्वानी में ब्यापा काम ।
बूढ़ भये तन थाकन लागे, लटकन लागे चाम ॥१॥
कानन बहिर नैन नहिं सूझै, भये दाँत बेकाम ।
घर की त्रिया बिमुख होइ बैठी, पुत्र कियो कलकान ॥२॥
खटिया से भुइयाँ कर दीन्हीं, जम का गड़ा निसान ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, दुविधा में निकसत प्रान ॥३॥

(११०)

अब हम आनँद को घर पाये ।
जबतें दया भई सतगुरु की, अभय निसान उड़ाये ॥
काम क्रोध की गागर फोड़ी, ममता नीर बहाये ।
तजि परपंच बेद बिधि किरिया, चरन कँवल चित लाये ॥
पाँच तत्त कर तन कै गुदरिया, सुरत कै टोप लगाये ।
हद घर छोड़ बेहद घर आसन, गगन मँडल मठ छाये ॥
चाँद न सूर दिवस ना रजनी, तहाँ जाइ लौ लाये ।
कहै कबीर कोइ पिय की प्यारी, पिया पिया रटि लाये ॥

(१११)

संतौ अचरज भौ इक भारी, पुत्र धइल महतारी ॥
पिता के संगे भई बावरी, कन्या रहल कुमारी ।
खसमहिं छाड़ि ससुर संग गौनी, सो किन लेहु विचारी ॥
भाई के संगे सासुर गौनी, सासुहिं सावत दीन्हा ।
ननद भौज परपंच रचो है, मोर नाम कहि लीन्हा ॥
समधी के सँग नाहीं आई, सहज भई घरवारी ।
कहहि कबीर सुनो हो संतो, पुरुष जनम भौ नारी ॥

(११२)

राम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे ॥ टेक॥
अंजन उतपति वो ॐकार, अंजन मांड्या सब विस्तार ।
अंजन ब्रह्मा शंकर इंद, अंजन गोपी संगि गोब्यंद ॥
अंजन वाणी अंजन वेद, अंजन कीया नाना भेद ।
अंजन विद्या पाठ पुरान, अंजन फोकट कथहि गियान ॥
अंजन पाती अंजन देव, अंजन की करै अंजन सेव ।
अंजन नाचै अंजन गावै, अंजन भेष अनंत दिखावै ॥
अंजन कहौं कहाँ लग केता, दान पुंनि तप तीरथ जेता ।
कहै कबीर कोइ बिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागै ॥

(११३)

लोगा तुमहीं मति भोरा ।टेक॥
ज्यों पानी-पानी मिलि गयऊ, त्यों धुरि मिला कबीरा ॥१॥
जो मैथिल को साँचा व्यास, तोहर मरण होय मगहर पास ॥२॥
मगहर मरै, मरै नहिं पावे, अंतै मरै तो राम लजावै ॥३॥
मगहर मरै सो गदहा होय, भल परतीत राम सो खोय ॥४॥
क्या काशी क्या मगहर ऊसर, जो पै हृदय बसै मोरा ॥५॥
जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहि कहु कौन निहोरा ॥६॥

(११४)

हरि बिन तेरा मेरा रे मनुआँ, अपना कोई नहीं ।टेक॥
जबतक तेल दिये में बाती, जगमग जगमग होई ।
जल गया तेल निपट गई जोती, ले चल ले चल होई ॥
बुलबुल तो बागों में बोलै, सदा न रहती हरियाली ।
मस्त जवानी सदा न रहती, सिर पर मौत निसानी ॥

जबतक चोला भया पुराना, कबतक सियेगा दरजी ।
दुख का भंजन कोइ न मिलिया, जो मिलिया सो गरजी ॥
माटी ओढ़न माटी बिछावन, माटी के सिरहौना ।
एक दिन ऐसा होगा रे बन्दे, माटी में मिल जाना ॥
धन-जौवन के मद में फूला, सिर पर मौत निसानी ।
एक दिन ऐसा होगा रे मनुआँ, तुम डूबो बिन पानी ॥
तिरिया तेरी झुरि-झुरि रोई, बिछुड़ गई मेरी जोड़ी ।
दास कबीरा हँसकर बोले, जिन जोड़ी तिन तोड़ी ॥

(११५)

चेतो मानुष तन पाइके, गुरु के भजन करु हे ।
सखि हे ! फेरु न मिलथौं ऐसन देह से ,
तन धन छुटि जइथौं हे ॥
पाँच ही तत्त्व के पिंजड़ा से, अधिक सुहावन लागै हे ।
सखि हे ! नख-सिख भरल विकार से ,
हंसा बिन कोइ न राखै हे ॥
कुटुम्ब परिवार तोर दुश्मन होयथौं हे ।
सखि हे ! खोलि लेथौं कान हूँ के सोनवाँ ,
सुन्दर तन माटी मिलथौं हे ॥
घर रोवै सुंदर नारी, से बुढ़िया दुवारी रोवै हे ।
सखि हे ! भइया रोवै, शमशान घाट से ,
तन जारि घर आवै हे ॥
गहि ले तू पातिव्रत धर्म से, नित सत्संग करु हे ।
सखि हे ! येहो गहना अइथौं तोरा काम से ,
जाइब अमरपुर हे ॥
साहब कबीर सोहर गावल, गाबि के सुनावल हे ।
सखि हे ! फेरु न मिलथौं ऐसन अवसर ,
गुरु के भजन करु हे ॥

(११६)

मिलि चलु सखिया दिवस भैलै हे रतिया ,
चित भैलै जग से उदास ॥१॥
नैहरा में मन नहिं लागै मोरा हो सतगुरु ,
भेजि दिहो डोलिया कहार ॥२॥

कौने रंग डोलिया हे, कौने रंग ओहरिया हे ,
कौन रंग लागल कहार ॥३॥
लाली रंग डोलिया, सबुज रंग अहोरिया हे ,
लागी गैलै बत्तीसो कहार ॥४॥
पाँच ही जे भैया के, एक ही बहिनियाँ हे ,
सेहो चलल ससुराल ॥५॥
कहवाँ से जायब, कहवाँ समायब ,
कहवाँ में करब आराम ॥६॥
नैहरा से जायब, ससुरा समायब ,
अगमपुर करब आराम ॥७॥
कौने भैया आगे जैतै, कौने भैया पाछे जैतै ,
कौने भैया डोलिया के साथ ॥८॥
निर्गुन भैया आगे जैतै, सर्गुन भैया पाछे जैतै ,
धर्म भैया डोलिया के साथ ॥९॥
आपन-आपन सम्मर सम्हारि बाँधो हे सखिया ,
वहाँ नहिं पैंचा उधार ॥१०॥
अबरि के जाउना बहुरि नहिं आउना ,
फेरु ना मानुष अवतार ॥११॥
साहेब कबीर येहो गइलन समदनियाँ हो ,
संतो जन लिहो ना विचार ॥१२॥

(११७)

सुरति के डोरिया गगन बिच लागल, लागी गेलै गुरु से सनेह हे ।
गुरु रंग रसिया मन हरि लेलन्ह, पूर्बिला जनम के सनेह हे ॥
गिरि पर्वत के ऊपर बसथिन हो साहब, वहाँ से समदिया दैलन पठाय हे ।
अइलै समदिया उठि चलु साजन, जहाँ होय छै सत व्यवहार हे ॥
भवजल नदिया अगम बहै धरवा, सूझे न आर पार हे ।
कैसें के पार उतरबै हो साहब, गुरु बिनु लागै छै अन्हार हे ॥
सत्य सुकृत के नैया हो साहब, सुरति करलौं पतवार हे ।
पार उतरि जैबै नैहरा बिसरि जैबै, तजि देबै कुल परिवार हे ॥
साहब कबीर मुख मंगल गावल, शब्द परेखु टकसार हे ।
आपन-आपन संभर गठरी बाँधो, वहाँ नहिं पैंचा उधार हे ॥

(११८)

फुल एक फुललै बलमा के देशवा, सतगुरुँ दिहल लखाय हे ।
सूरत सनेहिया से सबद परेखल, मन भैलै परम हुलास हे ॥
सुष्मना घाट के साँकरी बटिया हे, हम धनि अलप वयस हे ।
चन्द्र वदन मोर अंगिया पसीज गैलै, नैना से ढरि परै लोर हे ॥
एक दिन मन मोरा उलटि समाओल, देखलौं बलमुवा के देश हे ।
झिलमिल ज्योति झलामल झलकै, मन भैलै परम हुलास हे ॥
साहब कबीर येहो मंगल गावल, सब्द परेखु टकसार हे ।
आपन-आपन सखि साँवर बाँधो, वहाँ नहीं पैंचा उधार हे ॥

(११९)

सोलहुँ सिंगार करि, गुरु पंथ धइलौं राम, गुरु पंथ धइलौं ;
हाथ लेलाँ, अहे सुरतिया निज हे डोरिया, हाथ लेलाँ ॥
गुरु के हवेलिया में, लागल केवड़िया राम, लागल केवड़िया ;
कौने बिधि, जैबै गुरु के हवेलिया, कौने बिधि ॥
हाथ लेलाँ कुंजी ताला, खोलबै केवड़िया राम, खोलबै केवड़िया ;
धमसि जैबै, हम गुरु के हवेलिया, धमसि जैबै ॥
गुरु के हवेलिया में, हरि गुण गैबै राम, हरि गुण गैबै ;
नाचि नाची, हम गुरु के रिझैबै राम, नाचि नाची ॥
गुरु मोरा रीझतै, मुक्ति फल पैबै राम, मुक्ति फल पैबै ;
मिटिये जैतै, मोरा जीव के हे अन्देसवा, मिटिये जैतै ॥
साहेब कबीर झुमरा गावल हे सजनी, गावल हे सजनी ;
भाग बड़ो, जिनकर लागल लगनियाँ, भाग बड़ो ॥

(१२०)

चढ़ि चलु गगन अटरिया, सेजरिया जहाँ बालम की ।टेक॥
ऊँची अटरिया लाल किवड़िया, गहु नाम की डोरिया ।
चाँद-सुरज की दिया बरतु है, वही बीच भूलैले डगरिया ॥
पाँच पचीस तीन घर बनिया, मनुवाँ है चौधरिया ।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान की, भुलि गैलै माया के बजरिया ॥
आठ महातम नौ दरवाजा, दसमा लागल केवड़िया ।
केवड़ा खोलि महल में पैसो, पिया पर पड़लै नजरिया ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, गुरु के वचन बलिहरिया ।
चतुर-चतुर मिलि पार उतरि गैला, मुरखा रहल झखमरिया ॥

(१२१)

गुरु भक्ति की महिमा अपार, निगुरा क्या जाने ॥ टेक॥
गुरु की भक्ति अति ही झीनी, जैसे मकरी की तार ॥ नि०॥
भवजल नदिया अगम बहै धरवा, जिसमें चौरासी की धार ॥ नि०॥
बिनु गुरु भक्ति कटै यम फाँसी, जम का खायेगा मार ॥ नि०॥
गुरु की भक्ति कटै जम फाँसी, जम के मुख पर छार ॥ नि०॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, गुरु बिनु नहिं निस्तार ॥ नि०॥

(१२२)

अरे मन धीरज काहे न धरै।
सुभ औ असुभ करम पूरबले, रती घटै न बढ़ै ॥
होनहार होवै पुनि सोई, चिंता काहे करै।
पसु पंछी जिव कीट पतंगा, सब की सुद्ध करै ॥
गर्भबास में खबर लेतु है, बाहर क्यों बिसरै।
मातु पिता सुत संपति दारा, मोह के ज्वाल जरै ॥
मन तू हंसन से साहिब के, भटकत काहे फिरै।
सतगुरु छोड़ और को ध्यावै, कारज इक न सरै ॥
साधुन सेवा कर मन मेरे, कोटिन ब्याधि हरै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज में जीव तरै ॥

(१२३)

जग में सोइ बैराग कहावै ।टेक॥
आसन मारि गगन में बैठे, दुर्मति दूर बहावै।
भूख प्यास औ निद्रा साधै, जियते तनहिं जरावै ॥१॥
भौसागर के भरम मिटावै, चौरासी जिति आवै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, भाव भक्ति मन लावै ॥२॥

(१२४)

संतो ! सो सतगुरु मोहि भावै, जो आवागमन मिटावै ।टेक॥
डोलत डिगे न बोलत बिसरै, अस उपदेश सुनावै।
बिन श्रम हठ किरिया से न्यारी, सहज समाधि लगावै ॥१॥
द्वार निरोध पवन नहिं रोकै, नहिं अनहद उरझावै।
यह मन जहाँ जाइ तहाँ निरभय, समता से ठहरावै ॥२॥
कर्म करे सब रहे अकर्मी, ऐसी युक्ति बतावै।
सदा अनंद फंद से न्यारा, भोग से योग सिखावै ॥३॥

तजि धरती आकाश अधर में, प्रेम मड़ैया छावै।
ज्ञान शिविर की मुक्ति शिला पर, आसन अचल लगावै ॥४॥
अंदर बाहर एकहि देखे, दूजा भाव मिटावै।
कहैं कबीर सोई गुरु पूरा, घट बिच अलख लखावै ॥५॥

(१२५)

सुमिरन बिन गोता खाओगे ।टेक॥
मुट्ठी बाँधे गर्भ से आये, हाथ पसारे जाओगे ॥
जैसे मोती फरत ओस के, बेर भये झरि जाओगे ॥
जैसे हाट लगावै हटवा, सौदा बिन पछताओगे ॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, सौदा लेकर जाओगे ॥

(१२६)

संत जन करत साहिबी तन में ।टेक॥
पाँच पचीस फौज यह मन की, खेलैं भीतर तन में।
सतगुरु सबद से मुरचा काटो, बैठो जुगत के घर में ॥१॥
बंकनाल का धावा करिके, चढ़ि गये सूर गगन में।
अष्ट कँवल दल फूल रह्यो है, परखे तत्त नजर में ॥२॥
पच्छिम दिसि की खिड़की खोलो, मन रहै प्रेम मगन में।
काम क्रोध मद लोभ निवारो, लहरि लेहु या तन में ॥३॥
संख घंट सहनाई बाजै, सोभा सिंध महल में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अजर साहिब लख घट में ॥४॥

(१२७)

जो कोइ या बिधि मन को लगावै ।टेक॥
जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढोलिया ढोल बजावै।
अपना बोझ धरै सिर ऊपर, सुरति बाँस पर लावै ॥
जैसे भुवंगम चरत बनी में, ओस चाटने आवै।
कभी चाटै कभी मनि तन चितवै, मनि तजि प्रान गँवावै ॥
जैसे कामिनि भरत कूप जल, कर छोड़े बतरावै।
अपना रँग सखियन सँग राचै, सुरति डोर पर लावै ॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, अपनी काया जरावै।
मातु पिता सब कुटुँब तियागै, सुरत पिया पर लावै ॥
धूप-दीप नैवेद अरगजा, ज्ञान की आरत लावै।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, फेर जनम नहिं पावै ॥

(१२८)

गुरु ने मोहिं दीन्हीं अजब जड़ी ।टेक॥
सो जड़ी मोहिं प्यारी लगतु है, अमृत रसन भरी ॥
कायानगर अजब इक बँगला, तामें गुप्त धरी ॥
पाँचो नाग पचीसो नागिन, सूँघत तुरत मरी ॥
या कारे ने सब जग खायो, सतगुरु देखि डरी ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, ले परिवार तरी ॥

(१२९)

जा घर आवागमन न होई, सो घर खोजहु हो भाई ॥
जा घर लक्ष्मी झाड़ू देति है, शिवजी करै कोतवाली हो ।
सोई घर ब्रह्मा को टहलुआ, विष्णु करै रखवाली हो ॥
इंगला-पिंगला जा घर नाहिं, सुखमन रहे समाई हो ।
तंतर-मंतर वा घर नाहिं, एके शब्द लौ लाई हो ॥
जेहि के सेवा सर्व उठि चितवत, सेवा से सिद्धि पाई हो ।
उलटा सींचै जल मूल में, सखा फूल फल देई हो ॥
अजपा जाप जपै वह देश में, आवागमन मिट जाई हो ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अचरज कहलौ न जाई हो ॥

(१३०)

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै ,
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं ।
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासे नहीं ,
समुझि विचारि ले मने माहीं ॥
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये ,
जन्म अनेक की अटक खोलै ।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै ,
जीव और सीव तब एक तोलै ॥

(१३१)

दिन नीके बीते जाते हैं ।टेक॥
सुमिरन कर ले राम नाम, तज विषय भोग सब और काम ।
तेरे संग चले न इक छदाम, जो देते हैं सो पाते हैं ॥१॥
लख चौरासी भोग के आया, बड़े भाग मानुष तन पाया ।
उस पर भी नहीं करी कमाय, अंत समय पछिताते हैं ॥२॥

कौन तुम्हारा कुटुंब परिवारा, किसके हो तुम कौन तुम्हारा ।
किसके बल हरि नाम बिसारा, सब जीते जी के नाते हैं ॥३॥
जो तू लग्यो विषय विलासा, मूरख फँस गयो मोह की फाँसा ।
क्या करता श्वासन की आशा, गए श्वास नहीं आते हैं ॥४॥
सच्चे मन से नाम सुमिर ले, बन आवे तो सुकृत कर ले ।
साधु पुरुष की संगति कर ले, दास कबीरा गाते हैं ॥५॥

(१३२)

करु सत्संग भरम गढ़ टूटै ।
बिनु सत्संग किये दुख पावै, पकड़ि-पकड़ि जम लूटै ॥
सत्संगति सब विधि सुखदायी, पाप गगरिया फूटै ।
दुख दरिद्र निकट नहिं आवै, काल जाल भ्रम छूटै ॥
कोइ-कोइ हंसा विवेकी जियरा, ज्ञान रतन धन लूटै ।
कहै 'कबीर' सुनो धर्मदासा, जनम मरण भय छूटै ॥

(१३३)

मेरे सतगुरु पकड़ी बाँह, नहीं तो मैं बहि जाता ।टेक॥
करम कोटि कोइला किया, ब्रह्म अगिनि परिचार ।
लोभ मोह भ्रम जारिया, सतगुरु बड़े दयार ॥१॥
कागा से हंसा किया, जाति बरन कुल खोय ।
दया दृष्टि से सहज सब, पातक डारे धोय ॥२॥
अज्ञानी भटकत फिरै, जाति बरन अभिमान ।
सतगुरु सबद सुनाइया, भनक पड़ी मेरे कान ॥३॥
माया ममता तजि दई, विषया नाहिं समाय ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, हद तजि बेहद जाय ॥४॥

(१३४)

मेरो मन अपने राम रिझाऊँ ।टेक॥
गंगा जाऊँ न जमुना जाऊँ, ना कोई तीरथ जाऊँ ।
सब तीरथ के घट ही में बासा, वाही में खूब नहाऊँ ॥१॥
योगी होऊँ न जटा बढ़ाऊँ, ना अंग विभूति लगाऊँ ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, आवागमन मिटाऊँ ॥२॥

(१३५)

मन तोहि नाच नचावै माया ।टेक॥
आसा डोरि लगाइ गले बिच, नट जिमि कपिहि नचाया ।
नावत सीस फिरै सब हीं को, नाम सुरत बिसराया ॥१॥

काम हेतु तुम निसिदिन नाचे, का तुम भरम भुलाया ।
नाम हेतु तुम कबहुँ न नाचे, जो सिरजल तोरी काया ॥२॥
ध्रू प्रह्लाद अचल भये जासे, राज बिभीषन पाया ।
अजहूँ चेत हेत कर पिउ से, हे रे निलज बेहाया ॥३॥
सुख सम्पति सब साज बड़ाई, लिखि तेरे साथ पठाया ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, गनिका बिवान चढ़ाया ॥४॥

(१३६)

पढ़ो मन ओ ना मा सी धंग ।टेक॥
ओंकार सबै कोइ सिरजै, सबद सरूपी अंग ।
निरंकार निर्गुन अविनासी, कर वाही का संग ॥१॥
नाम निरंजन नैनन मद्धे, नाना रूप धरंत ।
निरंकार निर्गुन अविनासी, निरखै एकै रंग ॥२॥
माया मोह मगन होइ नाचै, उपजै अंग तरंग ।
माटी के तन थिर न रहतु है, मोह ममता के संग ॥३॥
शील संतोष हृदे बिच दाया, शबद सरूपी अंग ।
साध के वचन सत्त करि मानौ, सिरजनहारो संग ॥४॥
ध्यान धीरज ज्ञान निर्मल, नाम तत्त गहंत ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आदि अंत परयन्त ॥५॥

(१३७)

बंदे जागो अब भई भोर ।
बहुतक सोये जन्म सिराये, इहाँ नहीं कोइ तोर ॥१॥
लोभ मोह हंकार तिरिसना, संग लीन्हे कोर ।
पछिताहुगे तुम आदि अंत से, जइहौ कवनी ओर ॥२॥
जठर अगिनि से तोहि उबारे, रच्छा कीन्ह्यो तोर ।
एक पलक तुम नाम न सुमिरे, बड़े हरामी खोर ॥३॥
बार-बार समझाय दिखाऊँ, कहा न माने मोर ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, धृग जीवन जग तोर ॥४॥

(१३८)

पास खड़ा नजरों में न आवे, ऐसा राम हमारा रे ।टेक॥
है घट में घट की सब जाने, रहत खलक से न्यारा रे ।
कोई ध्यावे पीर पैगम्बर, कोई ठाकुर-द्वारा रे ॥१॥

जप तप संयम और व्रत सब, कर कर ही सब हारा रे ।
गुरुगम बिन कोई लक्ष्य न पावे, कहत कबीर विचारा रे ॥२॥

(१३९)

जग में गुरु समान नहिं दाता ।टेक॥
बस्तु अगोचर दइ सतगुरु ने, भली बताई बाटा ।
काम क्रोध कैद करि राखे, लोभ को लीन्ह्यो नाथा ॥
काल्ह करै सो हालहि करि ले, फिर न मिलै यह साथा ।
चौरासी में जाइ पड़ोगे, भुगतो दिन अरु राता ॥
सबद पुकार पुकार कहत है, करि ले संतन साथा ।
सुमिरन बँदगी कर साहिब की, काल नवावै माथा ॥
कहै कबीर सुनो हो धर्मन, मानो बचन हमारा ।
परदा खोलि मिलो सतगुरु से, आवो लोक दयारा ॥

(१४०)

तलफै बिन बालम मोर जिया ।टेक॥
दिन नहिं चैन रैन नहिं निंदिया, तलफ तलफ के भोर किया ॥
तन मन मोर रहट अस डोलै, सूनी सेज पर जनम छिया ॥
नैन थकित भये पंथ न सूझै, साईं बेदरदी सुधि न लिया ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, हरो पीर दुख जोर किया ॥

(१४१)

सब बातन में चतुर है, सुमिरन में काँचा हो ।
सत्तनाम को छाड़ि के, माया सँग राचा हो ॥
दीनबन्धु बिसराइया, आया दे बाचा हो ।
ज्योंहि नचाया कामिनी, त्यों त्यों ही नाचा हो ॥
इन्द्रि बिषे के कारने, सही नर्क की आँचा हो ।
कहै कबीर हरि जब मिलै, हरिजन हो साँचा हो ॥

(१४२)

होली खेलत संत सुजान आतम राम से ।
छिन-छिन होली पल-पल होली, खेलत आठो याम से ॥
पंडित खेले पोथी पतरा से, काजी कितेब कुरान से ।
पतिव्रता खेले अपने पिया से, गनिका सकल जहान से ॥
योगी खेले योग युगति से, अभिमानी अभिमान से ।
कामी खेले कामिनी के संग, लोभी खेले दाम से ॥

अति ही प्रचण्ड वेग माया के, भरि भरि मारै बाण से।
कोटिन माँहि बचे कोई बिरला, कहँहि 'कबीर' गुरु ज्ञान से॥

(१४३)

यही घड़ी यही बेला साधो, हरि सुमरन का बेला है॥
लाख खरच फिर हाथ न आवे, मानुष जनम सुहेला है॥
जल्दी से उठ जाग सबेरे, काल मारेदा सेला है॥
न कोई संगी न कोई साथी, जाता हंस अकेला है॥
कहै 'कबीर' गुरू गुण गावो, झूठा जग का मेला है॥

(१४४)

काहू न मन बस कीन्हा, जग में काहू न बस कीन्हा।टेक॥
स्त्रिंगी ऋषि से बन में लूटे, विषै विकार न जाने।
पठई नारि भूप दसरथ ने, पकरि अयोध्या आने॥१॥
सूख पत्र पवन भषि रहते, पारासर से ज्ञानी।
भरमे रूप देख बनिता को, कामकन्दकला जानी॥२॥
सोइ सुरपति जाकी नारी सूची सी, निसदिन ही संग राखी।
गौतम के घर नारि अहिल्या, निगम कहत है साखी॥३॥
पारवती-सी पत्नी जाके, ताको मन क्यों डोले।
खलित भये छबि देख मोहनी, हा-हा करिके बोले॥४॥
एकै नाल कँवल सुत ब्रह्मा, जग उपराज कहावै।
कहैं कबीर इक मन जीते बिन, जिव आराम न पावै॥५॥

(१४५)

ओढ़ि ले रामनाम चदरिया, रे अभागा मनुवाँ।
नहिं लागतौ विषय बयरिया, रे अभागा मनुवाँ।टेक॥
यह मानव तन अनमोल, देखो अंतर का पट खोल।
लेकर ज्ञान तराजू तोल, रे अभागा मनुवाँ॥
यह मानव तन है हीरा, मूरख समझै इसको खीरा।
हमरा देखि-देखि के होवे पीड़ा, रे अभागा मनुवाँ॥
है रामनाम जग सार, इसके बिना नहिं निस्तार।
कहता वेद पुराण विचार, रे अभागा मनुवाँ॥
पामर काहे करत गुमान, तू तो दो दिन का मेहमान।
एक दिन जैहौ चदरिया तान, रे अभागा मनुवाँ॥

कबिरा कहत पुकार, जागो-जागो सोवनहार।
अब तो हो गया भिनसार, रे अभागा मनुवाँ॥

(१४६)

घट ही में राम, खोजै छो किये-किये नैय।टेक॥
जैसे दूध में घिऊ बसत है, बिना रे मथैने,
निकलै छै किये-किये नैय॥१॥
जैसे मेंहदी में लाल बसत है, बिना रे पिसैने,
निकलै छै किये-किये नैय॥२॥
जैसे तिल में तेल बसत है, बिना रे पेड़ैने,
निकलै छै किये-किये नैय॥३॥
जैसे जीव में पीव बसत है, ध्यान बिनु रे,
मिलै छै किये-किये नैय॥४॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, निसदिन भजन,
करै छो किये-किये नैय॥५॥

(१४७)

कब भजिहौं सत्तनाम मेरो मन॥
बालापन सब खेलि गँमायो, ज्वानी में व्यापौ काम।
वृद्ध भये तन काँपन लाग्यो, लटकन लागौ चाम॥
लाठी टेक चलत मारग में, सही जात नहिं घाम।
कानन बहिर नयन नहिं सूझै, दाँत भये बेकाम॥
घर की नारि बिमुख होइ बैठी, पुत्र करत बदनाम।
बड़बड़ात है बिरथा बूढ़ा, अटपट आठो याम॥
खटिया से भुमि कर दैहैं, छूटि जैहैं धन धाम।
कहत कबीर काह तब करिहैं, परिहैं जम से काम॥

(१४८)

दिवाने मन भजन बिना दुख पैहौ।टेक॥
पहिला जनम भूत का पैहौ, सात जनम पछितैहौ।
काँटे पर लै पानी पैहौ, प्यासन ही मरि जैहौ॥१॥
दूजा जनम सुवा का पैहौ, बाग बसेरा लेइहौ।
टूटे पंख बाज मँडराने, अधफड़ प्रान गँवैहौ॥२॥
बाजीगर के बानर होइहौ, लकड़िन नाच नचैहौ।
ऊँच नीच से हाथ पसारिहौ, माँगे भीख न पैहौ॥३॥

तेली घर के बैला होइहौ, आँखिन ढाँप ढँपैहौ।
कोस पचास घरै में चलिहौ, बाहर होन न पैहौ ॥४॥
पँचवाँ जनम ऊँट के पैहौ, बिन तौले बोझ लदैहौ।
बैठे से तो उठै न पैहौ, घुरच घुरच मरि जैहौ ॥५॥
धोबी घर के गदहा होइहौ, कटी घास न पैहौ।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठे, लै घाटे पहुँचैहौ ॥६॥
पंछी माँ तौ कौवा होइहौ, करर करर गुहरैहौ।
उड़ि के जाइ मैला पर बैठौ, गहिरे चोंच लगैहौ ॥७॥
सत्तनाम की टेर न करिहौ, मन हीं मन पछितैहौ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, नरक निसानी पैहौ ॥८॥

(१४९)

साधो देखो जग बौराना।
साँचि कहौ तो मारन धावै, झूँठे जग पतियाना ॥टेक॥
हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना ॥
बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी, प्रात करैं असनाना।
आतम छोड़ि पषानै पूजैं, तिन का थोथा ज्ञाना ॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ बर्त भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूले, आतम खबर न जाना ॥
घर-घर मंत्र जो देत फिरत हैं, माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना ॥
बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ैं किताब कुराना।
करैं मुरीद कबर बतलावैं, उनहूँ खुदा न जाना ॥
हिन्दू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
वह करैं जिबह को झटका मारैं, आग दोऊ घर लागी ॥
या विधि हँसत चलत हैं हमको, आप कहावैं स्याना।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना ॥

(१५०)

मानत नहिं मन मोरा साधो, मानत नहिं मन मोरा रे।
बार बार मैं कहि समुझावौं, जग में जीवन थोरा रे ॥१॥

या काया कौ गर्ब न कीजै, क्या साँवर क्या गोरा रे।
बिना भक्ति तन काम न आवै, कोटि सुगंधि चभोरा रे ॥२॥
या माया जनि देखि रे भूलौ, क्या हाथी क्या घोड़ा रे।
जोरि-जोरि धन बहुत बिगूचे, लाखन कोटि करोरा रे ॥३॥
दुबिधा दुरमति औ चतुराई, जनम गयौ नर बौरा रे।
अजहूँ आनि मिलौ सत संगति, सतगुरु मान निहोरा रे ॥४॥
लेत उठाइ परत भुइँ गिरि गिरि, ज्यों बालक बिन कोरा रे।
कहै कबीर चरन चित राखो, ज्यों सूई बिच डोरा रे ॥५॥

(१५१)

सतगुरु सँग होरी खेलिये, जातें जग मरन भ्रम जाय ॥टेक॥
ध्यान जुगत की करि पिचकारी, छिमा चलावनहार।
आतम ब्रह्म जो खेलन लागे, पाँच पचीस मँझार ॥१॥
ज्ञान गली में होरी खेलै, मची प्रेम की कींच।
लोभ मोह दोऊ कटि भागे, सुन-सुन शब्द अतीत ॥२॥
त्रिकुटी महल में बाजा बाजै, होत छतीसो राग।
सुरत सखि जहँ देखि तमासा, सतगुरु खेलैं भाग ॥३॥
इंगला-पिंगला सुषमना हो, सुरत निरत दोउ नारि।
अपने पिया सँग होरी खेलें, लज्जा कान निवारि ॥४॥
सुन्न सहर में होत कुतूहल, करैं राग अनुराग।
अपने पुरुष के दरसन पावैं, पूरन प्रेम सुहाग ॥५॥
सतगुरु मिख फगुवा निज पायो, मारग दियो लखाय।
कहैं कबीर जो यह गति पावै, सो जिव लोक सिधाय ॥६॥

(१५२)

गुरु से लगन कठिन है भाई।
लगन लगे बिन काज न सरिहै, जीव प्रलय होइ जाई ॥टेक॥
जैसे पपीहा प्यासा बुंद का, पिया-पिया रटि लाई।
प्यासे प्रान तलक दिन राती, और नीर ना भाई ॥१॥
जैसे मिरगा सब्द सनेही, सब्द सुनन को जाई।
जैसे सुनै औ प्रान दान दे, तनिको नाहिं डेराई ॥२॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, पिय की राह मन भाई।
पावक देख डरै वह नाहीं, हँसत बैठ सरा माई ॥३॥

दो दल सन्मुख आन जुड़े हैं, सूरा लेत लड़ाई।
टूक-टूक होइ गिरे धरनि पर, खेत छोड़ि नहिं जाई ॥४॥
छोड़ो तन अपने की आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नाहिं तो जनम नसाई ॥५॥

२. महायोगी गोरखनाथजी

(१५३)

हँसिबा खेलिबा धरिबा ध्यान, अहनिसि कथिबा ब्रह्मज्ञान।
हँसे खेलै न करै मन भंग, ते निहचल सदा नाथ के संग॥
अजपा जपे सुंनि मन धरै, पाँचो इन्द्रिय निग्रह करै।
ब्रह्म अगनि में जो होमे काया, तस महादेव बन्दे पाया॥
धन जौवन की करै न आस, चित्त न राखै कामिनी पास।
नाद-बिन्द जाके घटि जरै, ताकी सेवा पारबति करै॥

(१५४)

गोरख बोलै सुणहु रे अवधू, पंचौं पसर निवारी।
अपनी आतमा आप विचारो, सोवो पाँव पसारी ॥१॥
ऐसा जाप जपो मन लाई। सोऽहं सोऽहं अजपा गाई॥
आसन दिढ़ करि धरो धियान। अहनिसि सुमिरौ ब्रह्मगियान॥
नासा अग्र निज ज्यों बाई। इड़ा प्यंगुला मधि समाई॥
छह सै सहँस इकीसौ जाप। अनहद उपजै आपै आप॥
बंकनालि में ऊगै सूर। रोम रोम धुनि बाजै तूर॥
उलटै कमल सहस्त्र दल वास। भ्रमर गुफा में ज्योति प्रकाश ॥२॥
खाये भी मरिए अणखाये भी मरिए।
गोरख कहै पूता संजमि ही तरिए ॥३॥

(१५५)

गोरख कहै सुनहु रे अवधू, जग में ऐसे रहणा।
आँखे देखिबा, काने सुणिबा, मुखथैं कछू न कहणा ॥१॥
नाथ कहै तुम आपा राखौ, हठ करि वाद न करणा।
यहु जग है काँटे की बाड़ी, देखि दृष्टि पग धरणा ॥२॥
मन में रहना, भेद न कहना, बोलिबा अमृत वाणी।
आगिका अगिनी होइबा अवधू, आपण होइबा पानी ॥३॥

३. गुरु नानक साहब

(१५६)

तूँ सुमिरन करि ले मेरे मना, तेरी बीती जात उमर गुरुनाम बिना॥
पंछी पंख बिनु हस्ती दंत बिनु, नारी तो देखो भला पुरुष बिना।
वेश्या को पुत्र पिता बिनु हीना, वैसे ही प्राणी गुरुनाम बिना॥
देह नैन बिनु रैन चंद्र बिनु, धरती देखो भला मेह बिना।
जैसे पंडित वेद बिहूना, वैसे प्राणी गुरुनाम बिना॥
कूप नीर बिनु धेनु क्षीर बिनु, मंदिर देखो भला दीप बिना।
जैसे तरुवर फल बिनु हीना, वैसे प्राणी गुरुनाम बिना॥
काम क्रोध मद लोभ निवारो, छोड़ो विरोध तू संत जना।
कह 'नानक' सुनो भगवन्ता, या जग में कोई नहीं अपना॥

(१५७)

अब मैं कौन उपाय करूँ॥
जेहि विधि मन को संसय छूटै, भव-निधि पार करूँ।
जनम पाय कछु भलौ न कीन्हौं, तातें अधिक डरूँ॥
गुरुमत सुन कछु ज्ञान न उपजौ, पसुवत उदर भरूँ।
कह नानक प्रभु विरद पिछानौ, तब हौं पतित तरूँ॥

(१५८)

गुरु बिन तेरो कोउ न सहाई।
का की मात पिता सुत बनिता, को काहू को भाई॥
धन धरनी अरु संपति सगरी, जो मान्यो अपनाई।
तन छूटे कछु संग न जाई, कहा ताहि लिपटाई॥
दीन दयाल सदा दुखभंजन, ता सों रुचि न बढ़ाई।
नानक कहत जगत सब मिथ्या, जिउ सुपने रैनाई॥

(१५९)

जामें भजन राम को नाहीं।
तिह नर जनम अकारथ खोइउ, इह राखौ मन माहीं॥
तीरथ करै बीरत पुनि राखै, नहिं मनुवा बसि जाको।
निहफल धरम ताहि तुम मानो, साँचु कहत मैं याको॥
जैसे पाहन जल महि राखिउ, भेदै नहिं तिहि पानी।
तैसे ही तुम ताहि पछानो, भगतिहीन जो प्राणी॥

कलि में मुकति नाम ते पावत, गुरु इह भेद बतावै।
कहु नानक सोई नर गरुआ, जा प्रभु के गुन गावै॥

(१६०)

जगत में झूठी देखी प्रीत।
अपने ही सुख सो सब लागे, क्या दारा क्या मीत॥
मेरो मेरो सभै कहत हैं, हित सों बाँधो चीत।
अंत काल संगी नहिं कोउ, यह अचरज है रीत॥
मन मूरख अजहू नहीं समुझत, सिख दै हार्ओ नीत।
'नानक' भवजल पार परै, जो गावै प्रभु के गीत॥

(१६१)

प्रीतम जानि लेव मन माहीं।
अपने सुख में सब जग बाँध्यो, कोउ काहू को नाहीं॥
सुख में आनि बहुत मिलि बैठत, रहत चहूँ दिसि घेरे।
बिपति पड़ै सब ही संग छाँड़त, कोउ न आवत नेरे॥
घर की नारि बहुत हित जासो, रहत सदा संग लागी।
जब यह हंसा तजिहैं काया, प्रेत प्रेत कर भागी॥
ऐसो जग व्यौहार बनो है, तासों नेह लगायो।
अन्त काल नानक बिन सतगुरु, कोउ काम न आयो॥

(१६२)

राम सुमिर राम सुमिर, एही मेरो काज है।
माया को संग त्याग, हरिजू की सरनि लाग।
जगत सुख मान मिथ्या, झूठौ सब साज है॥
सुपने ज्यों धन पछान, काहे पर कर गुमान।
बारू की भीत जैसे, बसुधा कौ राज है॥
'नानक' जन कहत बात, बिनसि जैहैं तेरो गात।
छिन छिन करि गइओ काल्ह, तैसे जातु आज है॥

(१६३)

या जग मीत न देख्यो कोई।
सकल जगत अपने सुख लाग्यो, दुख में संग न कोई॥
दारा-मीत पूत संबंधी, सगरे धनसो लागे।
जब ही निरधन देख्यो नर कों, संग छाड़ि सब भागे॥

कहा कहूँ या मन बैरिकौं, इनसों नेह लगाया।
दीनानाथ सकल भय भंजन, जस ताको बिसराया॥
स्वान-पूँछ ज्यों भयो न सूधो, बहुत जतन मैं कीन्हौं।
नानक लाज बिरद की राखौ, नाम तिहारो लीन्हौं॥

(१६४)

मैंने ऐसा सतगुरु पाया, मेरा रोम-रोम हर्षाया॥
मोह माया दे बंधन तोडे, मेरी देह ने भस्म है छोड़े।
मैंने छुटकारा है पाया, मेरा रोम-रोम हर्षाया॥
ऐसी मन में जोत जगाई, मोह माया की उतरी काई।
मोहे कछु न भाया, मेरा रोम-रोम हर्षाया॥
ऐसी जोत जली मन भीतर, जिधर भी देखूँ तू ही तू है।
मोहे हरि नाम है भाया। मेरा रोम-रोम हर्षाया॥
नैया छोड़ै आप हवाले, आप संभाले या न संभाले।
मोहे गुरु नाम है भाया, मेरा रोम-रोम हर्षाया।
मैंने ऐसा सतगुरु पाया, मेरा रोम-रोम हर्षाया॥

(१६५)

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जानी कछु पुन्य प्रगट्यो, तेरो मानुषा अवतार॥
घटत छिन छिन बढ़त पल पल, जात न लागत बार।
वृक्ष ते फल टूटि पड़िहै, बहुरि न लागत डार॥
वैर वाले सँभाल तन को, विषम ऐड़ी धार।
बेड़ा बाँधो सुरत की, चढ़ि उतर भौजल पार॥
काम क्रोध अहंकार तृष्णा, तजहु सकल बिकार।
दास नानक मान लीजै, नाम को आधार॥

(१६६)

साधो यह जग भरम भुलाना।
मात पिता भाई सुत बनिता, ताके रस लपटाना॥१॥
यौवन धन प्रभुता के मद में, निशि दिन रहत दिवाना॥२॥
राम नाम का सुमिरन छोड़ा, माया हाथ बिकाना॥३॥
दीन दयाल सदा दुख भंजन, ता सों मन न लगाना॥४॥
जन नानक कोटिन में किनहुँ, गुरुमुख होय पिछाना॥५॥

(१६७)

यह मन नेक न कह्यौ करे ।
सीख सिखाय रह्यौ अपनी सी, दुरमति तें न टरै ॥
मद-माया-बस भयौ बावरौ, हरिजस नाहिं उचरै ।
करि परपंच जगत में डह कै, अपनौ उदर भरे ॥
स्वान-पूँछ ज्यों होय न सूधो, कह्यो न कान धरे ।
कह नानक भजु राम नाम नित, जातें काज सरै ॥

(१६८)

रे मन राम सों कर प्रीत ।
श्रवण गोविन्द गुण सुनो, अरु गाउ रसना गीत ॥१॥
कर साधु-संगत सुमिर माधव, होय पतीत पुनीत ॥२॥
काल व्याल ज्यों परयो डोलै, मुख पसारे मीत ॥३॥
आजकल पुनि तोहि ग्रसिहैं, समझ राखो नीत ॥४॥
कहे नानक नाम भजले, जात अवसर बीत ॥५॥

(१६९)

साधो गोविंद के गुण गावो ।
मानुष जनम अमोलक पाया, बिरथा काहि गँवावो ॥
पतित पुनीत दीन बांधव हरि, सरन ताहि तुम आवो ।
गज को त्रास मिटि जिहि, सुमिरत तुम काहे बिसरावो ॥
तज अभिमान मोह माया, फुनि भजन राम चितु लावो ।
'नानक' कहत मुकति पंथ यह, गुरमुख हो तुम पावो ॥

(१७०)

काहे रे वन खोजन जाई ।
सरब निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ।।रहाउ।।
पुहप मधि ज्यों बास वसत है, मुकुर माहिं जैसे छाई ॥१॥
तैसे ही हरि बसै निरंतरि, घट ही खोजो भाई ॥२॥
बाहर भीतर एकै जानौ, इहु गुरु ज्ञान बताई ॥३॥
जन नानक बिनु आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई ॥४॥

(१७१)

मोहु कुटंबु मोहु सभकार । मोहु तुम तजहु सगल बेकार ॥१॥
मोह अरु भरमु तजहु तुम बीर। साचु नामु रिदे रवै सरीर ॥२॥
साचु नामु जा नव निधि पाई । रोवै पूत न कलपै माई ॥३॥

एतु मोहि डूबा संसारु । गुरुमुखि कोई उतरै पारि ॥४॥
एतु मोहि फिरि जूनी पाहि । मोहे लागा जमपुरी जाहि ॥५॥
गुरु दीखिआ जपु तपु कमाहि । ना मोहु तूटै ना थाइ पाहि ॥६॥
नदरि करे ता एहु मोहु जाइ । नानक हरि सिउ रहै समाइ ॥७॥

(१७२)

प्रभु मेरे प्रीतम प्रान-पियारे ।
प्रेम भगति निज नाम दीजिये, द्याल अनुग्रह धारे ॥
सुमिरौं चरन तिहारी प्रीतम, हृदे तिहारी आसा ।
संत जना पै करौं बेनती, मन दरसन को प्यासा ॥
बिछुरत मरन जीवन हरि मिलते, जन को दरसन दीजै ।
नाम आधार जीवन धन नानक, प्रभु मेरे किरपा कीजै ॥

(१७३)

रे मन इहि विधि जोग कमाउ ।
सिंगी साँच अकपट कंठला धिआन विभूत चढ़ाउ ।।रहाउ।।
ताती गहु आतम बसि कर की भिँछा नाम अधारं ।
बाजे परम तार तत हरि को उपजै राग रसारं ॥१॥
उघटै तान तरंग रंगि अति गिआन गीत बंधान ।
चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि व्योम विवान ॥२॥
आतम उपदेश भेष संयम को जाप सु अजपा जापै ।
सदा रहै कंचन सी काया काल न कबहूँ व्यापै ॥३॥

(१७४)

सब कछु जीवत को व्यौहार ।
मात पिता भाई सुत बांधव, अरु पुनि गृह को नारि ॥
तन तें प्रान होत जब न्यारे, टेरत प्रेत पुकार ।
आध घड़ी कोऊ नहिं राखै, घर तें देत निकार ॥
मृग तृस्णा ज्यों जग रचना, यह देखो हृदय विचार ।
कहे नानक भज राम नाम नित, जा तें होत उधार ॥

(१७५)

राम नाम कउ नमस्कार । जासु जपत होवत उधार ॥
जाके सिमरन मिटहि धंध । जाके सिमरन छूटहिं बंध ॥
जाके सिमरन मुर्ख चतुर । जाके सिमरन कलह उकार ॥

जाके सिमरन भउ दुख हरै। जाके सिमरन अपदा टरै ॥
जाके सिमरन मुचत पाप। जाके सिमरन नहीं संताप ॥
जाके सिमरन रिदै विकास। जाके सिमरन कवला दास ॥
जाके सिमरन निधि निधान। जाके सिमरन तरै निदान ॥
पतित पावन नाम हरी। कोटि भगत उधार करी ॥
हरिदास दासा दीनु शरण। नानक माथा संत चरण ॥

(१७६)

मुरसिद मेरा मरहमी, जिन मरम बताया।
दिल अंदर दीदार है, खोजा तिन पाया ॥ १॥
तसबी एक अजूब है, जामें हरदम दाना।
कुंज किनारे बैठि के, फेरा तिन्ह जाना ॥ २॥
क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपनो जाया।
सबको लोहू एक है, साहिब फरमाया ॥ ३॥
पीर पैगम्बर औलिया, सब मरने आया।
नाहक जीव न मारिये, पोषण को काया ॥ ४॥
हिरिस हिये हैवान है, बस करि ले भाई।
दाद इलाही नानका, जिसे देवै खुदाई ॥ ५॥

(१७७)

साधो मन का मान तियागो।
काम क्रोध संगत दुर्जन की, तातें अहनिस भागो ॥ध्रु०॥
सुख दुख दोनों सम करि जानै, और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहै अतीता, तिन जग तत्त पिछाना ॥
अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागै, खोजै पद निरवाना।
जन नानक यह खेल कठिन है, कोऊ गुरु-मुख जाना ॥

(१७८)

शब्द तत्तु बीर्ज संसार। शब्दु निरालमु अपर अपार ॥१॥
शब्द विचारि तरे बहु भेषा। नानक भेदु न शब्द अलेषा ॥२॥
शब्दै सुरति भया प्रगासा। सभ को करै शब्द की आसा ॥३॥
पंथी पंखी सिऊँ नित राता। नानक शब्दै शब्दु पछाता ॥४॥
हाट बाट शब्द का खेलु। बिनु शब्दै क्यों होवै मेलु ॥५॥
सारी स्त्रिष्टि शब्द कै पाछै। नानक शब्द घटै घटि आछै ॥६॥

(१७९)

रे मन ऐसो करि संनिआसा ।
वन से सदन सभै करि समझहु मन ही माहिं उदासा ।रहाउ॥
जत की जटा जोग को मज्जन नेम के नखन बढ़ाउ।
गिआन गुरू आतम उपदेसहु नाम विभूत लगाउ ॥१॥
अलप अहार सुलप सी निद्रा दया छिमा तन प्रीति।
सील संतोष सदा निरवाहबो ह्वैवो त्रिगुन अतीत ॥२॥
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सिऊ लयावै।
तबही आतम तत को दरसै परम पुरुष कह पावै ॥३॥

(१८०)

बिसर गई सब तात पराई। जब ते साधसंगत मोहि पाई ॥ध्रु०॥
ना को बैरी नाहिं बिगाना, सगल संगि हमको बनि आई ॥१॥
जो प्रभु कीन्हों सो भल मान्यो, एह सुमति साधुन ते पाई ॥२॥
सब महँ रम रहिया प्रभु एकै पेखि पेखि 'नानक' बिगसाई ॥३॥

(१८१)

हौं कुरबाने जाउँ पियारे, हौ कुरबाने जाऊँ ।टेक॥
हौं कुरबाने जाउँ तिन्हाँ दे, लैन जो तेरा नाउँ।
लैन जो तेरा नाउँ तिन्हाँ दे, हौं सद कुरबान जाउँ ॥१॥
काया रँगन जे थिये प्यारे, पाइये नाउँ मजीठ।
रंगनवाला जे रँगे साहिब, ऐसा रंग न डीठ ॥२॥
जिनके चोलड़े रत्तड़े प्यारे, कंत तिन्हाँ दे पास।
धूड़ तिन्हाँ कोजे मिले जी को, नानक दी अरदास ॥३॥

(१८२)

भूलिउ मनु माइआ उरझइउ।
जो जो करम कीउ लालच लगि तिह तिह आपु बंधाइउ ॥१॥
समझ न परी बिखै रस रचिउ जसु हरि को बिसराइउ।
संगि सुआमि सो जानिउ नाहिन वनु खोजन कउ धाइउ ॥२॥
रतनु राम घट ही के भीतरि ताको गिआनु न पाइउ।
जन नानक भगवन्त भजन बिनु बिरथा जनमु गवाइउ ॥३॥

(१८३)

बिनु सतिगुर सेवे जोगु न होई।
बिनु सतिगुर भेटे मुकति न कोई ॥

बिनु सतिगुर भेटे नामु पाइआ न जाइ।
बिनु सतिगुर भेटे महा दुखु पाइ॥
बिनु सतिगुर भेटे महा गरबि गुबारि।
नानक बिनु गुर मूआ जनमु हारि॥

(१८४)

जोगु न खिंथा जोग न डंडै, जोगु न भसम चड़ाईऐ॥
जोगु न मुंदी मूंड़ि मूंड़ाइऐ, जोग न सिंञी वाईऐ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ॥१॥
गली जोगु न होई।
एक द्रिसटि करि समसरि जाणै, जोगी कहीऐ सोई॥१॥
जोग न बाहरि मड़ी मसाणी, जोग न ताड़ी लाईऐ।
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ, जोग न तीरथि नाईऐ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ॥२॥
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै, धावतु वरजि रहाईऐ।
निझरु झरै सहज धुनि लागै, घर ही परचा पाईऐ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ॥३॥
नानक जीवतिया मरि रहीऐ, ऐसा जोगु कमाईऐ।
बाजे बाझहु सिंञी बाजे, तउ निरभउ पदु पाईऐ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ॥४॥

(१८५)

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा।रहाउ॥
साचे सचिआर विटहु कुरबाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु॥१॥
ना तिसु मात पिता सुत बंधपु ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर-परंपरु सगली जोति तुमारी॥२॥
घट घट अंतरी ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई॥३॥
जंत उपाइ कालु सिरिजंता बसगति जुगति सबाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई॥४॥
सूचै भाडै साचु समावै बिरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी॥५॥

(१८६)

नदरि करे ता सिमरिआ जाई। आत्मा द्रवै रहै लिवलाई॥
आतमा परातमा एकौ करै। अंतरि की दुविधा अंतरि मरै॥१॥
गुर परसादी पाइआ जाइ। हरि सिउ चितु लागै फिरि कालु न खाइ॥
सचि सिमरिऐ होवै परगासु। ताते विखिया महि रहै उदासु॥
सतिगुर की ऐसी बड़ियाई। पुत्र कलत्र बिचै गति पाई॥२॥
ऐसी सेवकु सेवा करै। जिसका जीउ तिसु आगै धरै॥
साहिब भावै सो परवाणु। सो सेवक दरगह पावै माणु॥३॥
सतिगुर की मूरति हिरदै बसाए। जो ईछै सोई फलु पाए॥
साचा साहिबु किरपा करै। सो सेवक जम ते कैसा डरै॥४॥
भनति नानकु करै विचारु। साची वाणी सिउ धरै पिआरु॥
ताको पावै मोख दुआर। जपु तपु सभु इहु सबदु है सारु॥५॥

(१८७)

गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा॥
गुरदेव सखा अगिआन भंजनु गुरदेव बंधिप सहोदरा।
गुरदेव दाता हरिनामु उपदेसै गुरदेव मंतु निरोधरा॥
गुरदेव सांति सति बुधि मूरति गुरदेव पारस परसपरा।
गुरदेव तीरथु अंम्रित सरोवरु गुर गिआन मजनु अपरंपरा॥
गुरदेव करता सभि पाप हरता गुरदेव पतित पवितकरा।
गुरदेव आदि जुगादि जुगु जुगु गुरदेव मंतु हरि जपि उधरा॥
गुरदेव संगति प्रभु मेल करि किरपा हम मूड़ पापी जितु लगि तरा।
गुरदेव सतिगुरु पारब्रह्म परमेसरु गुरदेव 'नानक' हरि नमसकरा॥

(१८८)

मन कर कबहुँ न हरी गुण गायो।
विषयासक्त रह्यो निशिवासर, कीनो आपनो भायो॥
गुरु उपदेश सुन्यो नहिं कानन, गृह-दारा लपटायो।
पर निन्दा कारण बहुत धावत, आगम नहिं समझायो॥
कहौं मैं आपनी करनी, जेहि बिधि जनम गँवायो।
कह नानक सब अवगुण मो में, राखि लेहु शरनायो॥

(१८९)

मन की मन ही माँहि रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेए, चोटी काल गही॥१॥

दारा मीत पूत रथ संपति, धन पूरन सभ मही।
और सकल मिथ्या यह जानो, भजना राम सही ॥२॥
फिरत फिरत बहुते जुग हार्‌यो, मानस देह लही।
नानक कहत मिलन की बिरियाँ, सुमिरत कहा नहीं ॥३॥

(१९०)

सब किछु घर महि बाहरि नाहीं। बाहरि टोलै सो भरमि भुलाहीं ॥
गुर परसादी जिनि अंतरि पाइआ। सो अंतरि बाहरि सुहेला जीउ ॥
झिमि झिमि बरसै अंम्रित धारा। मनु पीवै सुनि शबदु विचारा ॥
अनद विनोद करे दिन राती। सदा सदा हरि केला जीउ ॥
जनम जनम का बिछुड़िआ मिलिआ। साध क्रिपा ते सूका हरिआ ॥
सुमति पाए नामु धिआए। गुरमुखि होए मेला जीउ ॥
जल तरंग जिउ जलहि समाइआ। तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ ॥
कहु नानक भ्रम कटे किवाड़ा। बहुरि न होइअै जउला जीउ ॥

४. गोस्वामी तुलसीदास

(१९१)

मन पछितैहैं अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम वचन अरु हीते ॥१॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥२॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, ना करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर, तू न तजै अबही ते ॥३॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते ॥४॥

(१९२)

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं।
रामकृपा भव निसा सिरानी, जागे फिर न डसैहौं ॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर करतें न खसैहौं।
श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ॥
पर वस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुपहिं प्रन करि तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥

(१९३)

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास हित, मोह न छूटै माया ॥१॥
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन, भव पार न पावै कोई।
निसि गृह-मध्य दीप की बातन्हि, तम निवृत्त नहिं होई ॥२॥
जैसे कोइ एक दीन दुखित अति, असन बिना दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह, लिखे न विपति नसावै ॥३॥
षटरस बहु प्रकार व्यंजन कोउ, दिन अरु रैन बखानै।
बिनु बोले सन्तोष जनित सुख, खाइ सोइ पै जानै ॥४॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय आस मन माहीं।
तुलसिदास तब लगि जग जोनि, भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ॥५॥

(१९४)

राम जपु राम जपु, राम जपु बावरे।
घोर-भव नीर-निधि, नाम निज नाव रे ॥१॥
एक ही साधन सब रिद्धि सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कालि रोग जोग संजम समाधि रे ॥२॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो बाम रे।
राम नाम ही सो अंत सबही को काम रे ॥३॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूली रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥४॥
राम नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो लागि माँगे कूर कौर रे ॥५॥

(१९५)

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवे दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं ॥१॥
जो गति जोग विराग जतन करि, नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी ॥२॥
जो संपति दस सीस अरपि करि, रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा विभीषण कहँ, अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं ॥३॥
'तुलसिदास' सब भाँति सकल सुख, जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन, करहिं कृपानिधि तेरो ॥४॥

(१९६)

ममता तू न गई मेरे मन तें ॥ टेक॥
पाके केस जनम के साथी, लाज गई लोकनतें ।
तन थाके कर कँपन लागे, ज्योति गई नैननतें ॥१॥
स्रवन वचन न सुनत काहुके, बल गये सब इन्द्रिनतें ।
टूटे दसन बचन नहिं आवत, सोभा गई मुखनतें ॥२॥
कफ पित बात कंठ पर बैठे, सुतहिं बुलावत करतें ।
भाइ बंधु सब परम पियारे, नारी निकारत घरतें ॥३॥
जैसे ससि मंडल बिच स्याही, छुटे न कोटि जतनतें ।
तुलसिदास बलि जाऊँ चरनतें, लोभ पराये धनतें ॥४॥

(१९७)

रघुबर तुमको मेरी लाज ।
सदा-सदा मैं शरण तिहारी, तुम हो गरीब निवाज ॥१॥
पतित उधारन बिरद तिहारो, स्रवणन सुनी अवाज ।
हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज ॥२॥
अघ-खण्डन दुख भंजन जन के, यहि तिहारो काज ।
'तुलसिदास' पर किरपा कीजै, भक्ति दान देहु आज ॥३॥

(१९८)

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि राम भगति सुर-सरिता, आस करत ओस कन की ॥ १॥
धूम समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न वारि पुनि, हानि होत लोचन की ॥ २॥
ज्यों गच काँच विलोकि स्येन जड़, छाँह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर आहार बस, छत बिसारि आनन की ॥ ३॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौं गति जन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निजपन की ॥ ४॥

(१९९)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी ॥१॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥२॥

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा, तू है सब विधि हितु मेरो ॥३॥
तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु, चरन सरन पावै ॥४॥

(२००)

माधव ! मो समान जग माहीं ।
सब विधि हीन मलीन दीन अति, लीन विषय कोउ नाहीं ॥१॥
तुम सम हेतु रहित कृपालु, आरतहित ईसहि त्यागी ।
मैं दुख सोक विकल कृपालु, केहि कारन दया न लागी ॥२॥
नाहिन कछु अवगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना ।
ग्यान भवन तनु दियहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥३॥
बेनु करील श्रीखंड बसंतहि, दूषण मृषा लगावै ।
साररहित हतभाग्य सुरभि, पल्लव सो कहु किमि पावै ॥४॥
सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे ।
तुलसीदास प्रभु मोह सृंखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥५॥

(२०१)

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥१॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितनि, भये मुद मंगलकारी ॥२॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँख जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥३॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित, पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारी ॥४॥

(२०२)

यह विनती रघुवीर गुसाईं ।
और आस विस्वास भरोसो, हरौ जीव जड़ताई ॥१॥
चहौं न सुगति, सुमति-संपत्ति, कछु रिधि सिधि विपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग रामपद, बढ़ै अनुदान अधिकाई ॥२॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहिं, जहँ जहँ अपनी बरियाई ।
तहँ-तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये, कमठ अंड की नाई ॥३॥

यहि जग में, जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसीदास प्रभु सों, होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥४॥

(२०३)

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥१॥
कौन देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग-मृग-ब्याध पाषाण विटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥२॥
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया विवस बिचारे।
तिनके हाथ दास 'तुलसी' प्रभु, कहा अपुनपौ हारे ॥३॥

(२०४)

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥१॥
बंचक विषय विविध तनु धरि, अनुभव सुने अरु डीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने, सपने न अघाइ उबीठे ॥२॥
तुलसीदास प्रभुसों एकहि बल, बचन कहत अति ढीठे।
नाम की लाज राम करुनाकर, केहि न दिये कर चीठे ॥३॥

(२०५)

ते नर नरक-रूप जीवत जग,
भव-भंजन पद विमुख अभागी।
निसि-वासर रुचि पाप असुचि मन,
खलमति-मलिन निगम पथ-त्यागी ॥१॥
नहीं सतसंग भजन नहिं हरि को,
स्रवन न राम-कथा अनुरागी।
सुत-वित-दार-भवन-ममता-निसि,
सोवत अति न कबहुँ मति जागी ॥२॥
तुलसिदास हरिनाम-सुधा तजि,
सठ हठि पियत विषय-विष माँगी।
सूकर-स्वान-सृगाल-सरिस जन,
जनमत जगत जननि-दुख लागी ॥३॥

(२०६)

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै।
देखत सुनत बिचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं लागै ॥१॥

भक्ति ज्ञान वैराग्य सकल साधन, यहि लागि उपाई।
कोउ भल कहउ देउ कछु, असि बासना हृदयते न जाई ॥२॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं, तव कृपापात्र जन जागै।
निज करनी विपरीत देखि मोहि, समुझि महाभय लागै ॥३॥
जद्यपि भग्न मनोरथ विधिवस, सुख इच्छित दुख पावै।
चित्रकार कर हीन यथा, स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥४॥
हृषीकेस सुनि नाम जाऊँ बलि, अति भरोस जिय मोरे।
तुलसीदास इन्द्रिन संभव दुख, हरे बनहि प्रभु तोरे ॥५॥

(२०७)

लाभ कहा मानुष-तनु पाये।
काय बचन मन सपनेहु कबहुँक, घटत न काज पराये ॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन, आवत बिनहि बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये ॥
पर दारा परद्रोह मोह बस, किये मूढ़ मन भाये।
गरभबास दुख रासि जातना, तीब्र बिपति बिसराये ॥
भय निद्रा मैथुन अहार, सबके समान जग जाये।
सुर दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये ॥
गई न निज पर बुद्धि सुद्ध ह्वै, रहे न राम-लय लाये।
तुलसिदास यह अवसर बीते, का पुनि के पछिताये ॥

(२०८)

लाज न आवत दास कहावत।
सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ॥
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि, जप तप जाग बनावत।
मो सम मंद महाखल पाँवर, कौन जतन तेहि पावत ॥
हरि निरमल, मल ग्रसित हृदय, असमंजस मोहि जनावत।
जेहि सर काक कंक बक-सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥
जाकी सरन जाइ कोविद, दारुन त्रयताप बुझावत।
तहूँ गये मद मोह लोभ अति, सरगहुँ मिटत न सावत ॥
भव सरिता कहँ नाउ संत, यह कहि औरनि समुझावत।
हौं तिनसों हरि परम बैर करि, तुमसों भलो मनावत ॥
नाहिन और ठौर मो कहँ, तातें हठि नातो लावत।
राख सरन उदार-चूड़ामनि, तुलसीदास गुन गावत ॥

(२०९)

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन धाम बिबुध दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों ॥१॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के, एक एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार ॥२॥
विषय-वारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
तातें सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥३॥
कृपा डोरि बनसी पद अंकुस, परम प्रेम-मृदु चारो ।
एहि बिधि बेगि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥४॥
हैं स्रुति बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै ।
'तुलसिदास' यहि जीव मोह रजु, जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ॥५॥

(२१०)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपाते, संत स्वभाव गहौंगो ॥१॥
यथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम, बचन नेम निबहौंगो ॥२॥
पुरुष-वचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत-मान सम सीतल मन पर-गुन, नहीं दोष कहौंगो ॥३॥
परिहरि देहजनित चिन्ता, दुख-सुख समबुधि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भगति लहौंगो ॥४॥

(२११)

सुमिरन करले मन राम नाम, दिन नीके बीते जाते हैं ॥ टेक॥
बड़े भाग नर देही पाई, तापर भी नहीं करत कमाई ।
जब माँगेगा लेखा साईं, फिर पाछे पछताते हैं ॥ १॥
भाई बंधु कुटुम्ब परिवारा, तुम किसके और कौन तुम्हारा ।
किसके बल हरिनाम बिसारा, सब देखन ही के नाते हैं ॥ २॥
जब से लगी ये विषय बतासा, मूरख बाँधी झूठी आसा ।
समझावत जग तुलसीदासा, गये साँस नहीं आते हैं ॥ ३॥

(२१२)

माधव मोह फाँस क्यों टूटै ।
बाहर कोटि उपाय करिय, अभिअन्तर ग्रन्थि न छूटै ॥१॥

घृत पूरन कराह अन्तरगत, ससि प्रतिबिम्ब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाइ कलप सत, अबटत नास न पावै ॥२॥
तरु कोटर महँ बस विहंग, तरु काटे मरइ न जैसे ।
साधन करिय विचारहीन, मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥३॥
अन्तर मलिन विषय मन अति, तनु पावन करिय पखारे ।
मरइ न उरग अनेक जतन, बलमीक विविध विधि मारे ॥४॥
'तुलसिदास' हरि गुरु करुना बिनु, विमल विवेक न होई ।
बिनु विवेक संसार घोर-निधि, पार न पावइ कोई ॥५॥

(२१३)

केहू भाँति कृपा सिंधु मेरी ओर हेरिये ।
मोको और ठौर न सुटेक एक तेरिये ॥
सहस सिलातें अति जड़मति भई है ।
कासों कहौं कौन जाति पाहनहिं दई है ॥
पद राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं ।
कलि-मल-खल देखि भारी भीति भियो हौं ॥
करम कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हौं ।
चाहत अनाथ नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं ॥
महामोह रावन विभीषन ज्यों ह्यों हौं ।
त्राहि तुलसी ! तिहूँ ताप तपो हौं ॥

(२१४)

मेरो मन हरिजू ! हठ न तजै ।
निसिदिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाव निजै ॥१॥
ज्यों जुबती अनुभवति प्रसव, अति दारुण दुःख उपजै ।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ, पुनि खल पतिहि भजै ॥२॥
लोलुप भ्रमत गृहपसु-ज्यों, जहँ-तहँ सिर पदत्रान बजै ।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग, कबहुँ न मूढ़ लजै ॥३॥
हौं हार्‌यौ करि जतन बिबिध बिधि, अतिसै प्रबल अजै ।
'तुलसिदास' बस होइ तबहिं जब, प्रेरक प्रभु बरजै ॥४॥

(२१५)

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं ।
जौ जमराज काज सब परिहरि, इहै ख्याल उर अनिहैं ॥१॥

चलिहैं छूटि पूंज पापिन के, असमंजस जिय जनिहैं ।
देखि खलल अधिकार प्रभू सों, मेरी भूरि भलाई भनिहैं ॥२॥
हँसि करिहैं परतीति भक्त की, भक्त सिरोमनि मनिहैं ।
ज्यों त्यों तुलसीदास कौसलपति, अपना यहि पर बनिहैं ॥३॥

(२१६)

भजु मन रामचरन सुखदाई ॥ध्रुव०॥
जिहि चरनन से निकसी सुरसरि, संकर जटा समाई ।
जटा संकरी नाम पर्‌यो है, त्रिभुवन तारन आई ॥१॥
जिन चरनन की चरन पादुका, भरत रह्यो लव लाई ।
सोइ चरन केवट धोइ लीने, तब हरि नाव चलाई ॥२॥
सोइ चरन संतन जन सेवत, सदा रहत सुखदाई ।
सोइ चरन गौतम ऋषि-नारी, परसि परम पद पाई ॥३॥
दंडकवन प्रभु पावन कीन्हो, ऋषियन त्रास मिटाई ।
सोई प्रभु त्रिलोक के स्वामी, कनक मृगा सँग धाई ॥४॥
कपि सुग्रीव बंधु भय-व्याकुल, तिन जप छत्र फिराई ।
रिपु को अनुज बिभीषन, निसिचर परसत लंका पाई ॥५॥
सिव सनकादि अरु ब्रह्मादिक, सेष सहस मुख गाई ।
तुलसीदास मारुत-सुत की प्रभु निज मुख करत बड़ाई ॥६॥

(२१७)

रघुवर ! रावरि यहै बड़ाई ।
निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई ॥१॥
थके देव साधन करि सब, सपनेहुँ नहिं देत दिखाई ।
केवल कुटिल भालू कपि कैनप, कियो सकल सँग भाई ॥२॥
मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ॥३॥
स्वान कहे तें कियोपुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई ।
तिय-निदंक मतिमंद प्रजा-रज, निज नय नगर बसाई ॥४॥
यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।
दीन दयालु दीन तुलसी की, काहे न सुरति कराई ॥५॥

(२१८)

दीन के दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।
जासों दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ ॥१॥

सुर नर मुनि असुर नाग साहब तो घनेरे ।
तो लौं जो लौं रावहे न नेक नयन फेरे ॥२॥
त्रिभुवन तिहु काल विदित वेद बदति चारी ।
आदि अंत मध्य राम साहबी तिहारी ॥३॥
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो ।
सुनि सुभाव सील सुजसु जाँचन जन आयो ॥४॥
पाहन पसु बिटप विहँग अपने करि लीन्हें ।
महाराज दसरथ के रंक राय कीन्हें ॥५॥
तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो ।
बारक कहिये कृपालु ! तुलसीदास मेरो ॥६॥

(२१९)

कुटुंब तजि सरन राम ! तेरी आयो ।
तजि गढ़ लंक, महल औ मंदिर,
नाम सुनत उठि धायो ॥ध्रुव०॥
भरी सभा में रावन बैठ्‌यो, चरन प्रहार चलायो ।
मूरख अंध कह्यो नहिं मानै, बार-बार समुझायो ॥१॥
आवत ही लंकापति कीनो, हरि हँस कंठ लगायो ।
जनम-जनम के मिटे पराभव, राम दरस जब पायो ॥२॥
हे रघुनाथ ! अनाथ के बंधु, दीन जान अपनायो ।
तुलसीदास रघुवीर सरन तैं, भगति अभय पद पायो ॥३॥

(२२०)

जानत प्रीति-रीति रघुराई ।
नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह-सगाई ॥१॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई ।
ऐसेहु पितु ते अधिक गीध पर, ममता गुन गरुआई ॥२॥
तिय-बिरही-सुग्रीव सखा लखि, प्रान प्रिया बिसराई ।
रन पर्‌यो बंधु बिभीषण ही को, सोच हृदय अधिकाई ॥३॥
घर गुरु-गृह, प्रिय सदन सासुरे, भई जब जहँ पहुनाई ।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की, रुचि माधुरी न पाई ॥४॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत, रहत सकुच सिरनाई ।
केवट मीत कहे सुख मानत, बानर बंधु बड़ाई ॥५॥

प्रेम कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन, तिहुँ काल न पाई ।
तेरो रिनी' कह्यौ हौं कपि सों, ऐसी मानहि को सेवकाई ॥६॥
तुलसी राम-स्नेह-सील लखि, जो न भगति उर आई ।
तौ तोहिं जनति जाय जननी जड़, तनु-तरुनता गँवाई ॥७॥

(२२१)

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरिपद बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ यह समुझ सबेरो ॥१॥
बिछुरे ससि रबि मन नैन निते, पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्त्रमित निसि दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरे ॥२॥
जद्यपि अति पुनीत सुर सरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत, नित बहिबो ताहू केरो ॥३॥
छुटै न विपति भजे बिनु रघुपति, स्त्रुति-संदेह निबेरो ।
तुलसीदास सब आस छाँड़ि करि, होहु राम कर चेरो ॥४॥

(२२२)

रघुपति भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई ॥१॥
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी ॥२॥
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥३॥
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी ॥४॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास एहि दसा हीन, संसय निर्मूल न जाहीं ॥५॥

(२२३)

माधव असि तुम्हारि यह माया ।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया ॥१॥
सुनिय गुनिय समुझिय समझाइय, दशा हृदय नहिं आवै ।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित भव, दारुण विपति सतावै ॥२॥
ब्रह्म पियूष मधुर शीतल, जो पै मन सो रस पावै ।
तौ कत मृगजल रूप विषय कारण निसि बासर धावै ॥३॥
जेहि के भवन विमल चिंतामनि, सो कत काँच बटोरै ।
सपने परबस परइ जागि, देखत केहि जाइ निहोरै ॥३॥

ज्ञान भगति साधन अनेक सब, सत्य झूठ कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरि कृपा मिटइ भ्रम, यह भरोस मन माहीं ॥४॥

(२२४)

केशव कही न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र हरि, समुझि मनहिं मन रहिये ॥१॥
शून्य भीति पर चित्र रंग नहिं, तनु बिना लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुःख पाइय एहि तनु हेरे ॥२॥
रवि कर नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥३॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल अबल कोउ मानै ।
'तुलसीदास' परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥४॥

(२२५)

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो ।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ॥१॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख, निकटहिं रहत दुरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन स्त्रम करत मोहवस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ॥२॥
करम-कीच जिय जानि सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ, फिरि फिरि विकल अकास निचोयो ॥३॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू महिं गायो ।
डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ ! नींद भर सोयो ॥४॥

(२२६)

कबहूँ मन विस्त्राम न मान्यो ।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ-तहँ इन्द्रिन तान्यो ॥१॥
जद्यपि बिषय सँग सह्यो दुःख, बिषम-जाल अरुझान्यो ।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो ॥२॥
जन्म अनेक किये नाना विधि, कर्म कीच चित सान्यो ।
होइ न बिमल विबेक नीर बिनु, वेद पुरान बखान्यो ॥३॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों, हरषि हृदय नहिं आन्यो ।
तुलसीदास कब तृषा जाय सर, खनतहिं जनम सिरान्यो ॥४॥

(२२७)

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो ।
परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहि, बाहर फिरत विकल भय धायो ॥१॥

ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो ।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगन्ध कहाँ तें आयो ॥२॥
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेवार तृन छायो ।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो ॥३॥
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुन, तापर दुसह दरिद्र सतायो ।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि, विषय बबूर बाग मन लायो ॥४॥
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो ।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय, कीजै नाथ उचित मन भायो ॥५॥

(२२८)

जागु जागु जीव जड़, जो है जग जामिनी ।
देह गेह नेह जानि, जैसे घन दामिनी ॥१॥
सोवत सपनेहूँ सहै, संसृति संताप रे ।
बूड़्यो मृगवारि खायो, जेंवरी को साँप रे ॥२॥
कहैं वेद बुध तू तो, बूझि मन माहिं रे ।
दोष दुख सपने के, जागे ही पै जाहिं रे ॥३॥
तुलसी जागे ते जाय, ताप तिहुँ ताय रे ।
रामनाम सुचि रुचि, सहज सुभाय रे ॥४॥

५. संत सूरदास

(२२९)

रे मन मूरख जनम गँवायो ।
कर अभिमान विषय सों राच्यो, नाम सरन नहिं आयो ॥१॥
यह संसार फूल सेमर को, सुन्दर देखि लुभायो ।
चाखन लग्यो रूई उड़ि गइ, हाथ कछू नहिं आयो ॥२॥
कहा भयो अबके मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो ।
'सूरदास' हरि नाम-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायो ॥३॥

(२३०)

सबै दिन गये विषय के हेत ।
तीनों पन ऐसे ही बीते, केस भये सिर सेत ॥१॥
आँखिन अंध श्रवण नहिं सुनियत, थाके चरन समेत ।
गंगाजल तजि पियत कूप जल, हरि तजि पूजत प्रेत ॥२॥
रामनाम बिनु क्यों छूटोगे, चंद्र गहे ज्यों केत ।
सूरदास कछु खरच न लागत, रामनाम मुख लेत ॥३॥

(२३१)

सब दिन होत न एक समान ॥टेक॥
एक दिन राजा हरिश्चन्द्र गृह, सम्पति मेरु समान ।
एक दिन जाय श्वपच गृह सेवत, अम्बर हरत मसान ॥१॥
एक दिन दूलह बनत बराती, चहुँ दिसि गढ़त निसान ।
एक दिन डेरा होत जंगल में, कर सूँघे पगतान ॥२॥
एक दिन सीता रुदन करत है, महा विपिन उद्यान ।
एक दिन रामचन्द्र मिलि दोऊ, बिचरत पुष्प विमान ॥३॥
एक दिन राजा राज युधिष्ठिर, अनुचर श्री भगवान ।
एक दिन द्रौपदि नगन होत है, चीर दुसासन तान ॥४॥
प्रगटत है पूरब की करनी, तज मन सोच अजान ।
सूरदास गुन कहँ लगि बरनौं, बिधि के अंक प्रमान ॥५॥

(२३२)

वृक्षन से मत ले, मन तू वृक्षन से मत ले ।
काटे वाको क्रोध न करहीं, सिंचत न करहिं नेह ॥
धूप सहत अपने सिर ऊपर, और को छाँह करेत ।
जो वाही को पथर चलावे, ताही को फल देत ॥
धन्य-धन्य ये पर-उपकारी, वृथा मनुज की देह ।
सूरदास प्रभु कहाँ लगि बरनौं, हरिजन की मत ले ॥

(२३३)

सबै दिन नाहि एक से जात ।
सुमिरन ध्यान कियो करि हरि को, जब लगि तन कुसलात ॥१॥
कबहुँ कमला चपला पाके, टेढ़े-टेढ़े जात ।
कबहुँक मग-मग धूरि टटोरत, भोजन को बिल खात ॥२॥
या देही के गरब बावरो, तदपि फिरत इतरात ।
वाद-विवाद सबै दिन बीते, खेलत ही अरु खात ॥३॥
हौं बड़ हौं बड़ बहुत कहावत, सूधे करत न बात ।
जोग न जुगति ध्यान नहीं पूजा, बृद्ध भये अकुलात ॥४॥
बालापन खेलत ही खोयो, तरुनापन अलसात ।
सूरदास अवसर के बीते, रहिहौ पुनि पछितात ॥५॥

(२३४)

गुरु बिनु ऐसी कौन करै ।
माला तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै ॥

भव सागर से बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।
सूर स्याम गुरु ऐसो समरथ, छिन में लै उधरै॥

(२३५)

प्रभु! मेरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो, चाहे तो पार करो॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।
यह दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरो॥
एक नदिया एक नार कहावत, मैलो नीर भरो।
जब मिलिके दोउ एक बरन भए, सुरसरि नाम परो॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत, 'सूर' स्याम झगरो।
अबकी बेर मोहि पार उतारो, नहिं प्रण जात टरो॥

(२३६)

जा दिन सन्त पाहुने आवत।
तीरथ कोटि अन्हान करे फल, दरसन ते ही पावत॥
नेह नयो दिन-दिन प्रति उनको, चरण कमल चित लावत।
मन वच कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ सुमिरावत॥
मिथ्यावाद उपाधि रहित ह्वै, विमल-विमल जस गावत।
बन्धन कठिन कर्म जो पहिले, सोऊ काटि बहावत॥
संगति रहै साधु की अनुदिन, भव दुख दूरि नसावत।
'सूरदास' या जनम-मरण तें, तुरत परम गति पावत॥

(२३७)

अपने जान मैं बहुत करी।
कौन भाँति हरि कृपा तुम्हारी, सो स्वामी समुझी न परी॥
दूरि गयो दरसन के ताईं, व्यापक प्रभुता सब बिसरी।
मनसा वाचा कर्म अगोचर, सो मूरति नहिं नैन धरी॥
गुण बिनु गुणी स्वरूप रूप बिनु, नाम लेत श्री स्याम हरी।
कृपासिन्धु अपराध अपरमित, छमो सूर तें सब बिगरी॥

(२३८)

ऊधो कर्मण की गति न्यारी।
सब नदियाँ जल भर भर बहिया, सागर किस विधि खारी॥
उज्ज्वल पंख दियो बगुला को, कोयल कित गुन कारी।
सुन्दर नयन मृगा को दीन्हे, बन-बन फिरत उघारी॥

मूरख-मूरख राजे कीन्हों, पंडित फिरत भिखारी।
'सूर' प्रभु मिलिवे की आशा, छिन-छिन बीतत भारी॥

(२३९)

तजौ मन हरि बिमुखन को संग।
जिनके संग कुमति उपजति है, परत भजन में भंग॥
कहा होत पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगायै, स्वान न्हवायै गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अंग।
गज को कहा अन्हवाये सरिता, बहुरि धरै वह ढंग॥
पाहन पतित वान नहिं बेधत, रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजौ रंग॥

(२४०)

रे मन जनम पदारथ जात।
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैं ह्वैं, ज्यों तरुवर के पात॥१॥
सन्निपात कफ कंठ विरोधी, रसना टूटी जात।
प्रान लिये जम जात मूढ़मति, देखत जननी तात॥२॥
छिन इक माँहि कोटि जुग बीतत, फेरि नरक की बात।
यह जग प्रीति सुवा सेमर की, चाखत ही उड़ि जात॥३॥
जम के फंद नहीं पड़ु बौरे, चरनन चित्त लगात।
कहत सूर बिरथा यह देही, अंतर क्यों इतरात॥४॥

(२४१)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तररुवर के, सबै पात झड़ि जैहैं॥टेक॥
या देही का गर्व न करिये, स्यार काग गिध खइहैं।
तीन नाम तन विष्ठा कृम होय, नातर खाक उड़इहैं॥
कहाँ वह नैन कहाँ वह शोभा, कहँ रंग रूप दिखइहैं।
जिन लोगन सों नेह करत हौं, सो तोहि देखि घिनइहैं॥
जिन पुत्रन को बहु विधि पाल्यो, देवी देव मनइहैं।
तेहि ले बाँस दियो खोपड़ी में, शीश फाड़ि बिखरइहैं॥
घर के कहत सबेरे काढ़ो, भूत होय घर खइहैं।
अजहूँ मूढ़ करो सत संगत, संतन में कछु पइहैं॥

नर वपु धर जो जन नहिं गुरु के, जम के मारग जइहैं ।
'सूरदास' भगवन्त भजन बिन, वृथा सो जनम गँवइहैं ॥

(२४२)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै ॥
कमलनैन को छोड़ि महातम, और देव को ध्यावै ॥
परम गंग को छाड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै ॥
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ॥

(२४३)

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
तुम सों कहाँ छिपी करुणामय, सबके अन्तरजामी ॥
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमकहरामी ।
भरि भरि उदर विषय को धायो, जैसे सूकर-ग्रामी ॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयिनि संग बिसरामी ।
हरिजन छाँड़ि हरी बिमुखन की, निसिदिन करत गुलामी ॥
पापी कौन बड़ो जग मोते, सब पतितन में नामी ।
'सूर' पतित को ठौर कहाँ है, तुम बिनु श्रीपति स्वामी ॥

(२४४)

भजन बिनु कूकर सूकर जैसो ।
जैसे घर बिलाव के मूसा, रहत विषय-बस तैसो ॥
बक बकी अरु गीध गीधनी, आइ जनम लियौ वैसो ।
उनहूँ कै गृह सुत दारा हैं, इन्हें भेद कहु कैसो ॥
जीव मारि के उदर भरत हैं, तिनको लेखौ ऐसो ।
सूरदास भगवन्त भजन बिनु, मानो ऊँट खर भैंसो ॥

(२४५)

भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत ।
मलिन मंदमति डोलत घर-घर, उदर भरन के हेत ॥
मुख कटु बचन नित्त परनिन्दा, संगति सुजन न लेत ।
कबहुँ पाप करैं पावत धन, गाड़ि धूरि तिहि देत ॥
गुरु ब्राह्मन अरु संत-सुजन के, जात न कबहुँ निकेत ।
सेवा नहिं भगवंत चरन की, भवन नील कौ खेत ॥

कथा नहीं, गुन-गीत सुजस हरि, सब काहू दुख देत ।
ताकी कहा कहौं सुनि सूरज, बूड़त कुटम्ब समेत ॥

(२४६)

अबकी राखि लेहु भगवान ।
हम अनाथ बैठे द्रुम-डारियाँ, पारधि साध्यो बान ॥१॥
ताके डर निकसन चाहत हैं, ऊपर रह्यो सचान ।
दुहूँ भाँति दुख भयो कृपानिधि, कौन उबारै प्रान ॥२॥
सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी, लाग्यो तीर सचान ।
सूरदास गुन कहँ लग बरनौ, जै जै कृपानिधान ॥३॥

(२४७)

सबसों ऊँची प्रेम सगाई ।
दुर्योधन के मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाई ॥
जूठे फल सबरी के खायो, बहु विधि स्वाद बताई ।
प्रेम के बस नृप सेवा कीन्हीं, आपे बने हरि नाई ॥
राजसु जग्य युधिष्ठिर कीन्हा, तामें जूँठ उठाई ।
प्रेम के बस पारथ रथ हाँक्यो, भूलि गये ठकुराई ॥
ऐसी प्रीति बढ़ी वृंदाबन, गोपिन नाच नचाई ।
'सूर' कूर इहि लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई ॥

(२४८)

भजन बिनु बैल बिराने ह्वेहौ ।
पाऊँ चारि, सिर सींग, गूँग मुख, तब कैसे गुन गैहौं ॥
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौं ।
टूटे कंध अरु फुटि नाकनि, कौ लौं धौं भुस खैहौ ॥
लादत जोतत लकुट बाधिहैं, तब कहँ मूड़ दुरैहौ ।
सीत-घाम घन बिपति बहुत विधि, भार तरे मरि जैहौ ॥
हरि संतन को कह्यो न मानत, कियो आपनो पैहौ ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु, मिथ्या जनम गवैहौ ॥

(२४९)

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै ॥
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।
मन बानी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ॥

रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालम्ब मन चकृत धावै ।
सब विधि अगम विचारहिं तातें, सूर सगुन लीला पद गावै ॥

(२५०)

जौं लौं सत्य स्वरूप न सूझत ।
तौं लौं मनु मणि कण्ठ विसारे, फिरत सकल वन बूझत ॥
अपनो ही मुख मलिन मन्दमति, देखत दरपन माँह ।
ता कालिमा मेटिबे कारन, पचत पखारत छाँह ॥
तेल तूल पावक पुट भरि धरि, बनै न दिया प्रकासत ।
कहत बनाय दीप की बातें, कैसे हो तम नासत ॥
सूरदास जब यह मति आई, वे दिन गये अलेखे ।
कहा जाने दिनकर की महिमा, अन्ध नयन बिनु देखे ॥

(२५१)

अब मैं जानी देह बुढ़ानी ।
सीस पाऊँ कर कह्यो न मानत, तन की दसा सिरानी ॥
आन कहत आनै कहि आवत, नैन नाक बहे पानी ।
मिटि गई चमक-दमक अंग-अंग की, मति अरु दृष्टि हिरानी ॥
नाहिं रही कछु सुधि तन मन की, भई जो बात पुरानी ।
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँगपानी ॥

(२५२)

अबके माधव मोहि उधारि ।
मगन हौं भव-अंबु-निधि में, कृपा-सिंधु मुरारि ॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ लहरि तरंग ।
लिये जात अगाध जल में, गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटत, मोह अघ सिर भार ।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सेंवार ॥
काम क्रोध समेत तृस्णा, पवन अति झकझोर ।
नाहिं चितवन देत तिय सुत, नाक नौका ओर ॥
थक्यो बीच बेहाल विह्वल, सुनहु करुणा मूल ।
स्याम भुज गहि काढ़ि डारहु, 'सूर' ब्रज के कूल ॥

(२५३)

अपुनपौ आपुन ही विसर्‌यो ।
जैसे स्वान काँच मन्दिर में, भ्रमि भ्रमि भूकि मर्‌यो ॥

हरि सौरभ मृग नाभि बसत है, द्रुम तृन सूँघि मर्‌यो ।
ज्यों सपने में रंक भूप भयो, तसकरि अरि पकर्‌यो ॥
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखि कै, आपुन कूप पर्‌यो ।
जैसे गज लखि फटिक शिला में, दसनन जाइ अर्‌यो ॥
मरकट मूठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर घर द्वार फिर्‌यो ।
सूरदास नलनी को सुवटा, कहि कौने जकर्‌यो ॥

(२५४)

है हरि नाम को आधार ।
और या कलिकाल नाहिन, रह्यो विधि-ब्योहार ॥
नारदादि सुक्रादि संकर, कियो यहै विचार ।
सकल स्रुति दधि मथत पायो, इतो यह घृतसार ॥
दसहु दिसि गुन करम रोक्यो, मीन को ज्यों धार ।
सूर हरि के भजन बल तें, मिट गयो भव पार ॥

(२५५)

तुम मेरी राखो लाज हरी ।
तुम जानत सब अंतरयामी, करनी कुछ न करी ॥
औगुन मोते बिसरत नाहीं, पल छिन घरी घरी ।
सब प्रपंच की पोट बाँधि के, अपने सीस धरी ॥
दारा-सुत-धन मोह किये हैं, सुधि-बुधि सब बिसरी ।
सूर पतित को बेग उधारो, अब मेरी नाव भरी ॥

(२५६)

जो हम भले बुरे तौ तेरे ।
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई, बिनती सुन प्रभु मेरे ॥
सब तजि तुम सरनागत आयो, निज कर चरन गहे रे ।
तुव प्रताप बल बढ़त न काहू, निडर भये घर चेरे ॥
और देव सब रंक भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे ।
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा ते, पाये सुख जु घनेरे ॥

(२५७)

मन तोसों केतिक बार कही ।
समझी न चरन गहे गोविन्द के, उर अघ सूल सहो ॥
सुमिरन ध्यान कथा हरिजु की, यह एको न रही ।
लोभी लंपट विषयनि से हित, यौं तेरी निबही ॥

छाड़ि कनक मनि रतन अमोलक, काँच की कीरच गही ।
ऐसो तू है चतुर विवेकी, पय तजि पियत मही ॥
ब्रह्मादिक रूद्रादिक रवि शशि, देखे सूर सबही ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु, सुख तिहुँ लोक नहीं ॥

(२५८)

हैं प्रभु ! मोहूँ तें बढ़ि पापी ?
घातक कुटिल चबाई कपटी, मोह क्रोध संतापी ॥१॥
लंपट भूत पूत दमरीकौ, विषय जाप नित जापी ।
काम बिबस कामिनी ही के, रस हठ करि मनसा थापी ॥२॥
भच्छ अभच्छ अपै पीवन को लोभ लालसा धापी ।
मन क्रम बचन दुसह सबहिन सों, कटुक वचन आलापी ॥३॥
जेते अधम उधारे प्रभु तुम, मैं तिन्हकी गति मापी ।
सागर सूर बिकार जल भरो, बधिक अजामिल बापी ॥४॥

(२५९)

कहा कमी जाके रामधनी ?
मनसा नाथ मनोरथ पूरन, सुखनिधान जाकी मौज घनी ॥१॥
अर्थ धर्म अरु काम मोच्छ फल, चार पदारथ देत छनी ।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक, मो बपुरे की कहा गनी ॥२॥
कहौ कृपन की माया कितनी, करत फिरत अपनी अपनी ।
खाइ न सकै खरच नाहिं जानै, ज्यों भुजंग सिर रहत मनी ॥३॥
आनंद मगन राम गुन गावैं, दुख संताप की काटि तनी ।
सूर कहत जे भजत राम को, तिन सों हरि सों सदा बनी ॥४॥

(२६०)

जो तुम रामनाम चित धरतौ ।
अबकी जन्म अगिलो तेरो, दोऊ जन्म सुधरतौ ॥
जम को त्रास सबै मिटि जातो, भक्तनाम तेरो परतौ ।
तंदुल घिरत सँवारि स्याम को, संत परोसो करतौ ॥
होतो नफा साधु की संगति, मूल गाँठ ते टरतौ ।
सूरदास बैकुंठ पैठ में, कोऊ न फैंट पकरतौ ॥

(२६१)

अब मैं नाच्यों बहुत गुपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ॥१॥

महामोह के नुपूर बाजत, निन्दा शब्द रसाल ।
भरम भर्‌यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगत चाल ॥२॥
तृष्णा नाद करत घटे भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दै भाल ॥३॥
कोटिक काल काँछि देखराई, जल थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौं नन्दलाल ॥४॥

(२६२)

अपुनपौ आपुन ही में पायो ।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो ॥
ज्यों कुरंग नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो ।
फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तन छायो ॥
राज कुँआर कंठे मणि भूषण, भ्रम भयो कह्यो गँवायो ।
दियो बताइ और सत जन तब, तनु को पाप नसायो ॥
सपने माहिं नारि को भ्रम भयो, बालक कहूँ हिरायो ।
जागि लख्यो ज्यों को त्यों ही है, ना कहुँ गयो न आयो ॥
सूरदास समुझे की यह गति, मन ही मन मुसकायो ।
कहि न जाय या सुख की महिमा, ज्यों गूँगो गुर खायो ॥

(२६३)

ताते सेइये यदुराई ।
सम्पति विपति विपति सों सम्पति, देह धरे को यहै सुभाई ॥
तरुवर फूलै फलै परिहरै, अपने कालहिं पाई ।
सरवर नीर भरै पुनि उमड़ै, सूखे खेह उड़ाई ॥
द्वितिय चन्द्र बाढ़त ही बाढ़े, घटत घटत घटि जाई ।
सूरदास सम्पदा आपदा, जिनि कोऊ पतिआई ॥

(२६४)

कितक दिन हरि सुमिरन बिनु खोये ।
पर निन्दा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोये ॥
तेल लगाय कियो रुचि मर्दन, वस्त्रहिं मलि-मलि धोये ।
तिलक लगाइ चले स्वामी बनि, विषयनि के मुख जोये ॥
काल बली ते सब जग काँपत, ब्रह्मादिक हू रोये ।
सूर स्याम गुरु ऐसो समरथ, छिन में लै उधरै ॥

(२६५)

सोई भलो जो रामहिं गावैं ।
स्वपच प्रसन्न होइ बड़ सेवक, बिनु गुपाल द्विज जन्म न भावै ॥१॥
वाद-विवाद जग्य व्रत साधे, कतहूँ जाइ जन्म डहकावै ।
होइ अटल जगदीश भजन में, सेवा तासु चारि फल पावै ॥२॥
कहूँ ठौर नहिं चरन-कमल बिनु, भृंगी ज्यों दसहूँ दिसि धावै ।
सूरदास प्रभु संत समागम, आनंद अभय निसान बजावै ॥३॥

(२६६)

प्रभु ह्वौं सब पतितन को राजा ।
परनिंदा मुख पूरि रह्यो जग, यह निसान नित बाजा ॥
तृष्णा देसरु सुभट मनोरथ, इन्द्रिय खड़ग हमारे ।
मंत्री काम कुमत देवै को, क्रोध रहत प्रतिहारे ॥
गज अहंकार चढ़यो दिगबिजयी, लोभ छत्र धरि सीस ।
फौज असत संगति की मेरी, ऐसो हौं मैं ईस ॥
मोह मदै बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार ।
सूर पाप को गढ़ दृढ़, कोनो मुहकम लाइ किंवार ॥

(२६७)

उधो मन माने की बात ।
दाख छोहरा छाँड़ि अमृतफल, विष कीरा विष खात ॥
जो चकोर को देइ कपूर कोइ, तजि अंगार अघात ।
मधुप करत घर कोरे काठ में, बंधत कमल के पात ॥
जो पतंग हित जानि आपनो, दीपक सो लपटात ।
सूरदास जाको मन जासों, सोई ताहि सुहात ॥

(२६८)

कहते हैं, आगे जपिहैं राम ।
बीचहि भई और की औरे, पर्‌यो काल से काम ॥
गरभवास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो विश्राम ।
बालापन खेलत ही खोयौ, जोबन जोरत दाम ॥
अब तो जरा निपट नियरानी, कर्‌यौ न कछुवै काम ।
सूरदास प्रभु को बिसरायौ, बिना लिये हरि नाम ॥

(२६९)

जा पर दीनानाथ ढरैं ।
सोइ कुलीन बड़ सुंदर सोइ, जेहि पर कृपा करैं ॥
कौन विभीषण रंक निसाचर, हरि हँसि छत्र धरैं ।
राजा कौन बड़ो रावन ते, गर्वहिं गर्व गरैं ॥
रंकहु कौन सुदामाहू ते, आप समान करैं ।
रूप में अधिक कौन सीता ते, जनम वियोग भरैं ॥
अधिक कुरूप कौन कुबिजा ते, हरि पति पाय वरैं ।
कौन विरक्त अधिक नारद ते, निसि-दिन भ्रमत फिरैं ॥
अधम कौन है अजामिल ते, जम तहुँ जात डरैं ।
जोगी कौन बड़ो संकर ते, ताको काम छरैं ॥
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, केहि रस रसिक ढरैं ।
'सूरदास' भगवन्त-भजन बिनु, फिर फिर जठर जरैं ॥

(२७०)

मुरली धुन गाजा, सूर सुरत सर साजा ।टेक॥
निरखत कँवल नैन नभ ऊपर, शब्द अनाहद बाजा ।
सुन धुन मैल मुकर मन माजा, पाया अमीरस झाझा ॥
सूरत संध सोध सत काजा, लख लख संत समाजा ।
घट-घट कुंज पुज जहँ छाजा, पिंड ब्रह्मांड बिराजा ॥
फोड़ आकास अलल पछ भाजा, उलट के आप समाजा ।
ऐसे सुरत निरख निहअच्छर, कोटि कृसन तहँ लाजा ॥
सूरदास सार लख पाया, लख लख अलख अकाया ।
सतगुरु गगन गली घर पाया, सिंध में बुंद समाया ॥

(२७१)

दो में एकौ न भई ।
ना हरि भजे न गृह-सुख पाये, वृथा बिहाइ गई ॥
ठानी हुती और कहु मन में, औरे आनि ठई ।
अविगत गति कछु समुझि परत नहिं, जो कछु करत दई ॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुंब मिलि, निसिदिन होत खई ।
पद-नख चंद-चकोर विमुख मन, खात अंगार मई ॥
विषय विकार दावानल उपजी, मोह बयार बई ।
भ्रमत भ्रमत बहुतक दुख पायो, अजहुँ न टेव गई ॥

कहा होत अबके पछताये, बहुत बेर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई॥

(२७२)

हरि बिनु कोऊ काम न आयौ।
इहि माया झूठी प्रपंच लगि, रतन सौ जनम गँवायौ॥
कंचन कलस विचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायौ।
तामैं तैं ततछन ही काढ्यो, पल भर रहन न पायौ॥
हौं तव संग जरौंगी यौं कहि, तिया धूति धन खायौ।
चलत रही चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायौ॥
बोलि बोलि सुत स्वजन मित्रजन, लीन्यौं सुजस सुहायौ।
पर्‌यौ जु काज अंत की बिरियाँ, तिनहुँ न आनि छुड़ायौ॥
आसा करि करि जननी जायौ, कोटिक लाड़ लड़ायौ।
तोरि लयौ कटिहू कौ डेरा, तापर बदन जरायौ॥
पतित उधारन गनिका तारन, सौ मैं सठ बिसरायौ।
लियौ न नाम कबहुँ धोखै हूँ, सूरदास पछितायौ॥

(२७३)

अब नर चेतो भली-भली, पछताओगे कर मली-मली॥
सूखे दह कमल कुम्हलाये, मछली मर गई जरी जरी॥
काल शिकारी सबका जीवन, एक दिन खैइहै तरी-तरी॥
दया धरम न तन में राखै, पर धन लावै छली-छली॥
भीम अर्जुन पाँचो पाण्डव, गये हिमालय गली-गली॥
औरों की तो क्या गिनती है, राम कृष्ण भी गये गली॥
राजा-रंक सबै चली जैहै, रावण जैसे बली-बली॥
'सूरदास' कहै कर जोरी, यह दुनियाँ है चला चली॥

(२७४)

जो मन कबहुँक हरि को जाँचै।
आन प्रसंग उपासना छाड़ै, मन वच क्रम अपने उर साँचै॥
निशिदिन श्याम सुमिरि यश गावै, कल्पन मेटि प्रेम रस पाचै।
यह व्रत धरै लोक में विचरै, सम करि गनै महामणि काँचै॥
शीत उष्ण सुख दुख नहिं मानै, हानि भये कछु सोच न राचै।
जाइ समाइ 'सूर' वा निधि में, बहुरि न उलटि जगत में नाचै॥

६. सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंस

(२७५)

गंग जमुन जुग धार मधहि सरस्वति बही।
फुटल मनुषवा के भाग गुरु गम नाहिं लही॥१॥
सतगुरु सन्त कबीर नानक गुरु आदि कही।
जोइ ब्रह्माण्ड सोइ पिण्ड अन्तर कछु अहइ नहीं॥२॥
पिंगल दहिन गंग सूर्य इंगल चन्द जमुन बाईं।
सरस्वति सुषमन बीच चेतन जलधार नाईं॥३॥
सतगुरु को धरि ध्यान सहज स्तुति शुद्ध करी।
सनमुख विन्दु निहारि सरस्वति न्हाय चली॥४॥
होति जगामगि जोति सहसदल पीलि चली।
अद्‌भुत त्रिकुटी की जोति लखत स्तुति सुन्न रली॥५॥
सुन मद्धे धुन सार सुरत मिलि चलति भई।
महा सुन्य गुफा भँवर होइ सतलोक गई॥६॥
अलख अगम्म अनाम सो सत पद सूर्त रली।
पाएउ पद निर्वाण सन्तन सब कहत अली॥७॥
छूटेउ दुख को देश गुरु गम पाय कही।
सतगुरु देवी साहब दया 'मेँहीँ' गाइ दई॥८॥

(२७६)

आगे माई सतगुरु खोज करहु सब मिलिके,
जनम सुफल कर राह॥टेक॥
आगे माई सतगुरु सम नहिं हित जग कोई,
मातु पिता भ्राताह।
सकल कल्पना कष्ट निवारें,
मिटैं सकल दुख दाह॥आगे०॥
भव सागर अन्ध कूप पड़ल जिव,
सुझइ न चेतन राह।
बिन सतगुरु इहो गति जीव के,
जरत रहे यम धाह॥आगे०॥
सतगुरु सत उपकारि जिवन के,
राखैं जिवन सुख चाह।
होइ दयाल जगत में आवैं,
खोलैं चेतन सुख राह॥आगे०॥

परगट सतगुरु जग में विराजैं,
मेटयँ जिवन दुख दाह ।
बाबा देवी साहब जग में कहावयँ,
'मेँहीँ' पर मेहर निगाह ।।आगे०।।

(२७७)

सन्तन मत भेद प्रचार किया, गुरु साहब बाबा देवी ने ।।टेक।।
थे अन्ध बने फिरते बाहिर, अन्तर-पथ भेद न थे जाहिर ।
हमें बोधि बुझाय सुझाय दिया, गुरु साहब बाबा देवी ने ।।१।।
बन्द कराय पलक पट को, कहे बाहर में तुम मत भटको ।
सीधे सन्मुख सुषमन बिन्दु को, गहवाया बाबा देवी ने ।।२।।
सुषमन घर में ध्वनि धार बजै, चढ़ि श्वेत सुरत सो धार भजै ।
अनहद उलझन यहि युक्ति तजै, सतध्वनि की युक्ति दई गुरु ने ।।३।।
गुरु की यह युक्ति बड़ी मेँहीँ, 'मेँहीँ' परगट संसार नहीं ।
यहि ढोल पिटाय सुनाय दिया, गुरु साहब बाबा देवी ने ।।४।।

(२७८)

जय जयति सद्गुरु जयति जय जय, जयति श्री कोमल तनुं ।
मुनि वेष धारण करण मुनिवर, जयति कलिमल दल हनं ।।
जय जयति जीवन्मुक्त मुनिवर, शीलवन्त कृपालु जो ।
सो कृपा करिकै करिय आपन, दास प्रभु जी मोहि को ।।
जय जयति सद्गुरु जयति जय जय, सत्य सत् वक्ता प्रभू ।
हरि कुमति भर्महिं सुमति सत्य को, पाहि मोहि दीजै अभू ।।
यह रोग संसृति व्यथा शूलन्ह, मोह के जाये सभै ।
अति विषम शर बहु होय बेध्यो, मोहि अब कीजै अभै ।।
प्रभु ! कोटि कोटिन्ह बार इन्ह दुख, मोहि आनि सतायेऊ ।
यहु बार जहु एक वचन आशा, आय तहु में समायेऊ ।।
बिनु तुव कृपा को बचि सकै, तिहु काल तीनहु लोक में ।
प्रभु शरण तुव आरत जना तू, सहाय जन के शोक में ।।

(२७९)

अति पावन गुरु मंत्र मनहिं मन जाप जपो ।
उपकारी गुरु रूप को मानस ध्यान थपो ।।१।।
देवी देव समस्त पूरण ब्रह्म परम प्रभू ।
गुरु में करैं निवास कहत हैं संत सभू ।।२।।

प्रभहू से गुरु अधिक जगत विख्यात अहैं ।
बिनु गुरु प्रभु नहिं मिलैं यदपि घट माँहि रहैं ।।३।।
उर माँहीं प्रभु गुप्त अन्धेरा छाइ रहै ।
गुरु गुर करत प्रकाश प्रभू को प्रत्यक्ष लहै ।।४।।
हरदम प्रभु रहैं संग कबहुँ भव दुख न टरै ।
भव दुख गुरु दें टारि सकल जय जयति करै ।।५।।
तन मन धन को अरपि गुरू-पद सेव करो ।
'मेँहीँ' आज्ञा पालि दुस्तर भव सुख से तरो ।।६।।

(२८०)

गुरु-हरि-चरण में प्रीति हो, युग-काल क्या करे ।
कछुवी की दृष्टि दृष्टि हो, जंजाल क्या करे ।।१।।
जग-नाश का विश्वास हो, फिर आस क्या करे ।
दृढ़ भजन-धन ही खास हो, फिर त्रास क्या करे ।।२।।
वैराग-युत अभ्यास हो, निराश क्या करे ।
सत्संग-गढ़ में वास हो, भव-पाश क्या करे ।।३।।
त्याग पंच पाप हो, फिर पाप क्या करे ।
सत् वरत में दृढ़ आप हो, कोइ शाप क्या करे ।।४।।
पूरे गुरू का संग हो, अनंग क्या करे ।
'मेँहीँ' जो अनुभव ज्ञान हो, अनुमान क्या करे ।।५।।

(२८१)

साँझ भये गुरु सुमिरो भाई, सुरत अधर ठहराई ।
गुरु हो सुरत अधर ठहराई ।।१।।
सुषमन सुरति लगाइ के सुमिरो, मुखतें रहहु चुपाई ।
बाहर के पट बन्द करो हो, अन्तर पट खोलो भाई ।।२।।
सूर चन्द घर एके लावो, सन्मुख दृष्टि जमाई ।
ब्रह्म ज्योति को करो उजेरो, अन्धकार मिटि जाई ।।३।।
सूक्ष्म सुरत सुषमन होइ शब्द में, दृढ़ से धरो ठहराई ।
सारशब्द परखो विधि एही, भव-बन्धन जरि जाई ।।४।।
बुद्धि परे चिन्तन से न्यारा, अगम अनाम कहाई ।
रह 'मेँहीँ' गुरु सेवा लीना, तब ही होइ रसाई ।।५।।

(२८२)

यहि विधि जैबै भव पार, मोर गुरु भेद दिये ।। टेक ।।
दृष्टि युगल कर लेबै सुखमनियाँ हो, देखबै अजब रंग रूप ।।१।।

तममा जे फुटि फुटि ऐतै पँच रँगवा हो, बिजली चमकि अइतै तार ॥२॥
सुरति जे चढ़ि चढ़ि चन्द निहारतै हो, लखतै सुरज ब्रह्म रूप ॥३॥
सुन्न धँसिये स्तुति शब्द समैतै हो, पहूँचि मिलिये जैतै सत्त ॥४॥
सन्तन केर यह भेद छिपल छल, बाबा कयल परचार ॥५॥
तोहर कृपा से बाबा आहो देवी साहब, 'मेँहीँ' जग फैली गेल भेद ॥६॥

(२८३)

आओ वीरो मर्द बनो अब, जेल तुम्हें तजना होगा।
मन-निग्रह के समर क्षेत्र में, सन्मुख थिर डटना होगा ॥१॥
गुरु-पद धर कर ध्यान से शूरो, दृष्टि अड़ा दो सुषमन में।
मन की चंचलताई से, बल कर-करके बचना होगा ॥२॥
वक्त नहीं है ऐ वीरो अब, गाफिल होकर सोने का।
बिन्दु राह से निकल बहादुर, तम मण्डल टपना होगा ॥३॥
दामिनि दमकै चन्दा चमकै, सूर्य तपै जोती मण्डल।
इस मण्डल से आगे वीरो, और तुम्हें बढ़ना होगा ॥४॥
शब्द मण्डल में सार शब्द ध्वनि, गुरु गम होकर धर लेना।
जगत-जेल को इसी युक्ति से, सुन 'मेँहीँ' तजना होगा ॥५॥

(२८४)

निज तन में खोज सज्जन, बाहर न खोजना।
अपने ही घट में हरि हैं, अपने में खोजना ॥१॥
दोउ नैन नजर जोड़ि के, एक नोक बना के।
अन्तर में देख सुन-सुन, अन्तर में खोजना ॥२॥
तिल द्वार तक के सीधे, सुरत को खैंच ला।
अनहद धुनों को सुन-सुन, चढ़-चढ़ के खोजना ॥३॥
बजती हैं पाँच नौबतें, सुनि एक-एक को।
प्रति एक पै चढ़ि जाय के, निज नाह खोजना ॥४॥
पञ्चम बजै धुर घर से, जहाँ आप विराजैं।
गुरु की कृपा से 'मेँहीँ', तहँ पहुँचि खोजना ॥५॥

(२८५)

क्या सोवत गफलत के मारे, जाग जाग मन मेरे।
अन्तकाल संगी ना होगा, संग न चल कोउ तेरे ॥१॥
यह धन धाम कुटुम्ब कबीला, सब स्वारथ के चेरे।
अपने-अपने सुख के साथी, हेर न कोउ सुख तेरे ॥२॥

तन-मन सुख है ना सुख तेरो, आतम सुख निज तेरे।
तू तन-मन सुख निज कै जान्यो, भयो काल को चेरे ॥३॥
दृढ़ परतीत प्रीत करि गुरु से, कर सत्संग सबेरे।
या विधि भव फंदा कटि जैहैं, 'मेँहीँ' कहत हित हेरे ॥४॥

(२८६)

जनि लिपटो रे प्यारे जग परदेसवा, सुख कछु इहवाँ नाहिं ।टेक॥
यह परदेसवा काल को भेसवा, जो रे आवयँ दुख पाहिं।
सुधि करो प्यारे हो आपन देश के, जहवाँ क्लेश कछु नाहिं ॥१॥
निज काया गढ़ में ऐन महल होय, आपन घर पथ पाहिं।
चलु चलु यहि पथ हाँकत दृष्टि-रथ, धनि सतगुरु बतलाहिं ॥२॥
जौं नहिं समझहु सतगुरु पद गहु, परगट सतगुरु आहिं।
बाबा देवी साहब परगट सतगुरु, 'मेँहीँ' जा पद बलि जाहिं ॥३॥

(२८७)

यहि मानुष देह समैया में करु परमेश्वर में प्यार।
कर्म धर्म को जला खाक कर देंगे तुमको तार ।टेक॥
तहँ जाओ जहँ प्रकट मिलें वे तब जानो है स्नेह।
स्नेह बिना नहिं भक्ति होति है कर लो साँचा नेह ॥१॥
स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण कैवल्यहु के पार।
सुष्मन तिल हो पिल तन भीतर होंगे सबसे न्यारा ॥२॥
ब्रह्म-ज्योति ब्रह्म-ध्वनि को धरि-धरि ले चेतन आधार।
तन में पिल पाँचो तन पारा जा पाओ प्रभु सार ॥३॥
'मेँहीँ' मेँहीँ होइ सकोगे जाओगे वहि पार।
पार गमन ही सार भक्ति है लो यहि हिय में धार ॥४॥

(२८८)

समय गया फिरता नहीं, झटहिं करो निज काम।
जो बीता सो बीतिया, अबहु गहो गुरु नाम ॥१॥
सन्तमता बिनु गति नहीं, सुनो सकल दे कान।
जौं चाहो उद्धार को, बनो सन्त सन्तान ॥२॥
'मेँहीँ' मेँहीँ भेद यह, सन्तमता कर गाइ।
सबको दियो सुनाइ के, अब तू रहे चुपाइ ॥३॥

(२८९)

खोज करो अन्तर उजियारी, दृष्टिवान कोइ देखा है ।टेक॥
गुरु भेदी का चरण सेव कर, भेद भक्त पा लेता है ।
निशिदिन सुरत अधर पर कर कर, अंधकार फट जाता है ॥१॥
पीली नीली लाल सफेदी, स्याही सन्मुख आता है ।
छट-छट छट-छट बिजली छटकै, भोर का तार दिखाता है ॥२॥
चन्दा उगत उदय हो रविहू, धूर शब्द मिल जाता है ।
गुरु सतगुरु के चरण अधीनन, अगम भेद यह पाता है ॥३॥
विविध भाँति के कर्म जगत में, जीवन घेरि फँसाता है ।
बाबा देवि कहैं कह 'मेँहीँ', सतगुरु गुरु ही बचाता है ॥४॥

७. महर्षि संतसेवी परमहंस

(२९०)

सर्वेश को भज ले सुजन, अखिलेश को तू पाएगा ।
उपलब्ध कर विश्वेश को, तू वही हो जाएगा ॥
मन से मन्त्रावृत्ति करि कर, इष्ट विग्रह ध्यान भी ।
युग दृष्टि सूरत एक कर, घट ज्योति जुगनू पाएगा ॥
विद्युत सितारे बिन्दु शशि, ऊषा प्रभा रवि पूर भी ।
लख ज्योति अनुपम ब्रह्म की, अघ पुंज जल-भुन जाएगा ॥
ज्योति में सुन शब्द अनहद, धुन अनाहत को परख ।
सत्शब्द चेतन धार धरि, धुर धाम निश्चय जाएगा ॥
'संतसेवी' को बताया, संत मेँहीँ मर्म यह ।
है धर्म अब तेरा सुजन, कर कर्म उर प्रभु पाएगा ॥

(२९१)

गुरु सद्ज्ञान दाता हैं, वे ही सद्ज्ञान दाता हैं ।
जीवन शुद्ध सात्त्विक है, उन्हें सत्संग भाता है ॥
सिखाते ज्ञान भक्ति योग, सत चित जग विहारी हैं ।
आचरण शुद्धचारी है, जगत उपरामाचारी हैं ॥
जो अंतःसाधना करते, व शिष्यों को भी सिखलाते ।
ज्योति और नाद साधन से, प्रभु का मिलन बतलाते ॥
वे होते सदाचारी हैं, कुबुद्धि का हरण करते हैं ।
सुबुद्धि का सीख देकर वे, तिमिर अज्ञान हरते हैं ॥
अंतः तम को करके दूर, ज्योति भरपूर करते हैं ।
सत ध्वनि धार को धरकर, 'संत' भवसिंधु तरते हैं ॥

(२९२)

गुरुवर! भक्ति अपनी दो, यही है प्रार्थना मेरी ।
लगा लो शरण में अपनी, यही है प्रार्थना मेरी ॥
मन है बड़ा चंचल, विषय में रम रहा पल-पल ।
छुड़ाकर चरण में ले लो, यही है प्रार्थना मेरी ॥
न तुम बिसरो कभी मुझको, न मैं बिसरूँ कभी तुझको ।
सतत उर में रहा करना, यही है प्रार्थना मेरी ॥
रहे नहिं जगत की आशा, हो आज्ञाचक्र में वासा ।
भजन में लगे प्रति श्वासा, यही है प्रार्थना मेरी ॥
प्रभु जी! षट् विकारों के, कभी आधीन ना होऊँ ।
रहैं आधीन वे मेरे, यही है प्रार्थना मेरी ॥
दृष्टि थिर हो सुखमन में, सुरत धुर धार को पकड़े ।
जो पहुँचावे परम पद को, यही है प्रार्थना मेरी ॥
तेरा स्वरूप मेरा, हो मेरा स्वरूप तेरा ।
दुई का भेद मिट जाये, यही है प्रार्थना मेरी ॥
कह 'संत' दोउ कर जोड़ि, नाथ अब विनती सुनिये मोरि ।
दीजिये भव बंधन को तोड़ि, यही है प्रार्थना मेरी ॥

(२९३)

लीजिये गुरु से ज्ञान दीजिये शीश है ।
गुरु नहिं मानव मान जान जगदीश है ॥
ईश्वर के दो रूप सगुण और अगुण है ।
सगुण ब्रह्म गुरुदेव अनामी अगुण है ॥
तन मन धन सब वारि गुरू पर दीजिये ।
ब्रह्म-ज्ञान अनमोल वहाँ से लीजिये ॥
राग द्वेष छल छोड़ि भक्ति गुरु की करै ।
भव-बंधन कटि जाय जीव निश्चय तरै ॥
प्रथमहिं मानस जाप दूसरा ध्यान है ।
मनोयोग जो करै होत कल्याण है ॥
मानस जप हो शुद्ध कार्य सब सिद्ध है ।
मानस ध्यान से पूरण काम जगत प्रसिद्ध है ॥
तदुपरि दृष्टीयोग ध्यान में विन्दु धरै ।
विन्दु ग्रहण जो होय नाद का श्रवण करै ॥

अनहद नाद के पार में शब्द अनाहत है।
अद्वय अनुपम अकथ और अव्याहत है॥
यही मिलावै राम जगत नहिं आवई।
आवागमन मिटाय परम पद पावई॥
त्रिविध ताप हो दूर ज्ञान भरपूर हो।
कहै 'संत' ब्रह्मज्ञान से सब भ्रम दूर हो॥

(२९४)

करो सत्संग नित भाई, सुधारो आचरण अपना।
न भूलो जग प्रपंचों में, यहाँ कोई नहीं अपना॥
न खाओ मांस औ मछली, तजो अंडा व मदिरा को।
परायी नारि मत देखो, समझ माता-सदृश अपना॥
जो करता चौर कर्मों को, दण्ड देता है न्यायालय।
पतित वह लोक दृष्टी में, भूलकर संग मत करना॥
वचन हो सत्य प्रिय मधुरम्, व जीवन स्वावलंबी हो।
कर त्रयकाल संध्या नित, सफल मानव जनम करना॥
एक प्रभु का भरोसा कर, मिलेंगे अपने उर अन्दर।
'संत' की सीख अपनाकर, करो कल्याण कुछ अपना॥

(२९५)

करो तुम साधना मन से, सफलता हाथ है तेरे।
निश्छल भक्ति कर गुरु की, सहायक साथ है तेरे॥
न छोड़ो जाप मानस को, न छोड़ो ध्यान मानस को।
अड़ा दो दृष्टि सुखमन में, तो काला विन्दु है नेरे॥
प्रथम काला दरसता है, वही फिर श्वेत होता है।
झलकता ज्योति जगमग है, व मिटता तम का घेरा है॥
दृष्टि जब विन्दु पर जमती, तो अनहद नाद है मिलता।
नौबत पाँच टपने पर, नहीं माया का घेरा है॥
पंचम नौबत अकथ ध्वनि, प्रभु से मिलाती है।
'संत' तहँ भाव नहिं द्वैती, नहीं चौरासी फेरा है॥

(२९६)

मैं नहीं मेरा नहीं, यह 'मैं' किसी का है दिया।
छीन लेगा कब इसे इसका पता हमको नहीं॥
मैं नहीं मेरा नहीं, यह 'तन' किसी का है दिया।
छीन लेगा कब इसे, इसका पता हमको नहीं॥

मैं नहीं मेरा नहीं, यह 'मन' किसी का है दिया।
छीन लेगा कब इसे, इसका पता हमको नहीं॥
होश कर चेतो सबेरे, साँस की मत आस कर।
कब निकल जाएगी यह, इसका पता हमको नहीं॥
'संतसेवी' सत समझ, 'जीवन' किसी का है दिया।
छीन लेगा कब इसे, इसका पता हमको नहीं॥

(२९७)

कहो कोइ परदेशी की बात।
जो-जो गये बहुरि नहिं आये, कौन कहै कुशलात॥
मात-पिता सुत नारी हीना, नहिं कुटुम्ब नहिं तात।
गोत्र-विहीन जाति नहिं कोई, नहिं आवत नहिं जात॥
वरण नहीं तेहि रूप न रेखा, गौर न श्यामल गात।
रहता सबमें सबसे न्यारा, नहिं कुछ पीवत-खात॥
सोवत कबहुँ न जागत निशदिन, कहा साम-परभात।
वहाँ नहीं रवि शशि तारागण, नहीं दिवस नहिं रात॥
नहिं तहँ धरनि पवन नहिं पानी, गगन शीत नहिं ताप।
है सर्वदेशी और अदेशी, 'संत' पुण्य नहिं पाप॥

(२९८)

कोइ कहै प्रभू है कैसा? वह है जैसा का तैसा॥
जो गोचर है सो तो नाहीं, अहै अगोचर स्वामी।
सैन बैन के परे प्रभू है, सबके अन्तरयामी॥
नैन न देखै कर नहिं परसै, त्वचा ज्ञान से न्यारा।
घट-घट में वह बसै निरन्तर, जानहिं जाननहारा॥
जो कोई देखना चाहै, वह त्रय पट पार में देखै।
दृष्टियोग और नादध्यान करि, सहज स्वरूपहिं पेखै॥
सतगुरु ज्ञान बिना सब झूठा, झूठा सब संसारा।
सच्चा मालिक एक वही है, 'संत' सभी का प्यारा॥

(२९९)

सुसंग से सुख होता है, कुसंग से दुख होता है।
जो करता है नहीं सत्संग, जन्म-जन्मान्तर में रोता है॥
जो करता नित्य सत्संगति, उसे सद्ज्ञान मिलता है।
कुसंगति में पड़ा प्राणी, दुसह दुःख दर्द सहता है॥

किया सत्संग है जिसने, जीवन धन्य है उसका।
होता सुधार है उसका, पुनः उद्धार है उसका॥
सुसंगति सुयश देती है, कुसंगति अयश देती है।
कुसंगति नरक ले जाती, सुसंगति मुक्ति देती है॥
कुसंगति में पला जीवन, तमसाच्छन्न होता है।
सुसंगति में पला जीवन, प्रकाशापन्न होता है॥
करो सत्संग नित भाई, सुधारो अपने जीवन को।
'संत' अवसर मिला दुर्लभ, बना लो सफल जीवन को॥

(३००)

ईश की ही ईषणा से सृष्टि होती है।
जो अगोचर और गोचर-दृष्टि होती है॥
निःशब्द से है शब्द होता पुनः सृष्टि है।
अपरा परा दो भागों में वह विभक्त सृष्टि है॥
गीता-ज्ञान में भगवान ने है प्रकृति संज्ञा दी।
अपरा सगुण कहलाती परा निर्गुण कहाती है॥
निर्गुण से सगुण होता जिसे त्रयगुण भी कहते हैं।
जो सत्, रज और तम के नाम से अभिहित होते हैं॥
प्रथम प्रस्फुटित धारा को स्फोट कहते हैं।
त्रयाक्षर मात्र होने से उसे हम ओ३म् कहते हैं॥
धुरधाम की ही आदिध्वनि आद्याशक्ति कहलाती।
वही शास्त्रीय भाषा में है ध्वनि प्रणव कहलाती॥
वह सर्वव्यापक है इसी से राम कहते हैं।
सर्वाकर्षक होने से उसी को कृष्ण कहते हैं॥
ब्रह्म से उत्थित नाद को उद्गीथ कहते हैं।
उसी को ब्रह्मनाद शब्दब्रह्म और सतनाम कहते हैं॥
कहते सारशब्द सतशब्द चेतन शब्द भी।
वही प्रभु का ध्वन्यात्मक नाम और शिवनाम भी॥
दुःख हारक है सबका इसी से हरि है कहलाता।
अद्वय अनामय 'संत' ज्यों का त्यों ही है रहता॥

(३०१)

हे मतिहीनी माछरी, तूने भल नहिं कीन।
तजि समुद्र लघु ताल से, गाढ़ी प्रीती लीन॥१॥

अब तो जल सूखन लगे, होगा जीवन अंत।
अजहुँ प्रीति कर सिन्धु से, यही कहैं सब संत॥२॥
भीतर तो मैला भरा, बाहर कथै गियान।
भेंट-पुजापा ग्रहण कर, आखिर नरक निदान॥३॥
पाप करत मीठा लगे, तीखा सद् उपदेश।
तन छूटे जीव पायगा, यमपुर में बहु क्लेश॥४॥
अबहुँ भजो भगवान को, तजहु विषय की आस।
ना जानौं कब जायगी, चलती फिरती साँस॥५॥
भजन करत आलस लगै, बातन में हुशियार।
राग-द्वेष मन में भरा, जावै यम दरबार॥६॥
तन पवित्र गुरु-सेव कर, धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र हरि भजन कर, पावै पद निरवान॥७॥
छिन छिन छीजत जात है, परमायू यह जान।
वह कर मीजत जात है, जो नहिं करता ध्यान॥८॥
प्रथम जाप गुरु नाम है, दूजे है गुरु ध्यान।
युगल नयन की धार को, कीजिय एक समान॥९॥
युगल धार के मिलन से, होवै उर परकास।
नाद ध्यान तब कीजिये, होय विकार विनास॥१०॥
अनहद नादों के परे, सार शब्द पहिचान।
वही मिलावै ईश से, होय परम कल्यान॥११॥
कनक कनक तें कामिनी, शतगुण मद अधिकाय।
पाये खाये को कहै, देखत ही बौराय॥१२॥
हरि नहिं जाते हरिन सँग, रावण सँग सिय नाहिं।
जौं होते भावी कहूँ, करतल अपने माहिं॥१३॥

॥ 'संतमत-भजनावली' भाग-१, समाप्त ॥

संतमत-सत्संग की स्तुति-विनती और आरती

(१)

(प्रातःकालीन ईश-स्तुति)

सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर, औरु अक्षर पार में।
निर्गुण सगुण के पार में, सत् असत् हू के पार में ॥१॥
सब नाम रूप के पार में, मन बुद्धि वच के पार में।
गो गुण विषय पँच पार में, गति भाँति के हू पार में ॥२॥
सूरत निरत के पार में, सब द्वन्द्व द्वैतन्ह पार में।
आहत अनाहत पार में, सारे प्रपञ्चन्ह पार में ॥३॥
सापेक्षता के पार में, त्रिपुटी कुटी के पार में।
सब कर्म काल के पार में, सारे जंजालन्ह पार में ॥४॥
अद्वय अनामय अमल अति, आधेयता गुण पार में।
सत्तास्वरूप अपार सर्वाधार मैं-तू पार में ॥५॥
पुनि ओ३म् सोऽहम् पार में, अरु सच्चिदानंद पार में।
हैं अनन्त व्यापक व्याप्य जो, पुनि व्याप्य व्यापक पार में ॥६॥
हैं हिरण्यगर्भहु खर्व जासों, जो हैं सान्तन्ह पार में।
सर्वेश हैं अखिलेश हैं, विश्वेश हैं सब पार में ॥७॥
सत्शब्द धरकर चल मिलन, आवरण सारे पार में।
सद्गुरु करुण कर तर ठहर, धर 'मँहीं' जावे पार में ॥८॥

(२)

(प्रातः एवं सायंकालीन सन्त-स्तुति)

सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी ॥ टेक ॥
उनकी स्तुति केहि विधि कीजै, मोरी मति अति नीच अनाड़ी ॥ सब०॥
दुख-भंजन भव-फंदन-गंजन, ज्ञान-ध्यान-निधि जग-उपकारी।
विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि, सरल-सरल जग में परचारी ॥ सब०॥
धनि ऋषि-सन्तन्ह धन्य बुद्ध जी, शंकर रामानन्द धन्य अघारी।
धन्य हैं साहब सन्त कबीर जी, धनि नानक गुरु महिमा भारी ॥ सब०॥
गोस्वामी श्री तुलसि दास जी, तुलसी साहब अति उपकारी।
दादू सुन्दर सूर श्वपच रवि, जगजीवन पलटू भयहारी ॥ सब०॥
सतगुरु देवी अरु जे भये हैं, होंगे सब चरणन शिरधारी।
भजत है 'मँहीं' धन्य-धन्य कहि, गही सन्त-पद आशा सारी ॥ सब०॥

॥ प्रातःकालीन गुरु-स्तुति ॥

(३)

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार।
मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार ॥१॥
ज्ञान-उदधि अरु ज्ञान-घन, सतगुरु शंकर रूप।
नमो-नमो बहु बार हीं, सकल सुपूज्यन भूप ॥२॥
सकल भूल-नाशक प्रभू, सतगुरु परम कृपाल।
नमो कंज-पद युग पकड़ि, सुनु प्रभु नजर निहाल ॥३॥
दया-दृष्टि करि नाशिये, मेरो भूल अरु चूक।
खरो तीक्ष्ण बुधि मोरि ना, पाणि जोड़ि कहुँ कूक ॥४॥
नमो गुरू सतगुरु नमो, नमो-नमो गुरुदेव।
नमो विघ्न हरता गुरू, निर्मल जाको भेव ॥५॥
ब्रह्म रूप सतगुरु नमो, प्रभु सर्वेश्वर रूप।
राम दिवाकर रूप गुरु, नाशक भ्रम-तम-कूप ॥६॥
नमो सुसाहब सतगुरू, विघ्न विनाशक द्याल।
सुबुधि विगासक ज्ञानप्रद, नाशक भ्रम-तम-जाल ॥७॥
नमो-नमो सतगुरु नमो, जा सम कोउ न आन।
परम पुरुषहू तें अधिक, गावें सन्त सुजान ॥८॥

(४)

॥ छप्पय ॥

जय जय परम प्रचण्ड, तेज तम-मोह विनाशन।
जय जय तारण तरण, करन जन शुद्ध बुद्ध सन॥
जय जय बोध महान, आन कोउ सरवर नाहीं।
सुर नर लोकन माहिं, परम कीरति सब ठाहीं॥
सतगुरु परम उदार हैं, सकल जयति जय-जय करें।
तम अज्ञान महान अरु, भूल-चूक-भ्रम मम हरें ॥१॥
जय जय ज्ञान अखण्ड, सूर्य भव-तिमिर विनाशन।
जय जय जय सुख रूप, सकल भव-त्रास हरासन॥
जय-जय संसृति-रोग-सोग, को वैद्य श्रेष्ठतर।
जय-जय परम कृपाल, सकल अज्ञान चूक हर॥
जय-जय सतगुरु परम गुरु, अमित-अमित परणाम मैं।
नित्य करूँ सुमिरत रहूँ, प्रेम-सहित गुरुनाम मैं ॥२॥
जयति भक्ति-भण्डार, ध्यान अरु ज्ञान-निकेतन।
योग बतावनिहार, सरल जय-जय अति चेतन॥

करनहार बुधि तीव्र, जयति जय-जय गुरु पूरे ।
जय-जय गुरु महाराज, उक्ति-दाता अति रूरे ॥
जयति-जयति श्री सतगुरू, जोड़ि पाणि युग पद धरौं ।
चूक से रक्षा कीजिये, बार-बार विनती करौं ॥३॥
भक्ति योग अरु ध्यान को, भेद बतावनिहारे ।
श्रवण मनन निदिध्यास, सकल दरसावनिहारे ॥
सतसंगति अरु सूक्ष्म वारता, देहिं बताई ।
अकपट परमोदार न कछु, गुरु धरें छिपाई ॥
जय-जय-जय सतगुरु सुखद, ज्ञान सम्पूरण अंग सम ।
कृपा-दृष्टि करि हेरिये, हरिय युक्ति बेढंग मम ॥४॥

(५)

(प्रातःकालीन नाम-संकीर्त्तन)

अव्यक्त अनादि अनन्त अजय, अज आदि मूल परमातम जो ।
ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा, जिनसे कहिये स्फोट है सो ॥१॥
है स्फोट वही उद्गीथ वही, ब्रह्मनाद शब्दब्रह्म ओ३म् वही ।
अति मधुर प्रणव ध्वनि धार वही, है परमातम-प्रतीक वही ॥२॥
प्रभु का ध्वन्यात्मक नाम वही, है सारशब्द सत्शब्द वही ।
है सत् चेतन अव्यक्त वही, व्यक्तों में व्यापक नाम वही ॥३॥
है सर्वव्यापिनि ध्वनि राम वही, सर्व-कर्षक हरि कृष्ण नाम वही ।
है परम प्रचण्डिनि शक्ति वही, है शिव शंकर हर नाम वही ॥४॥
पुनि राम नाम है अगुण वही, है अकथ अगम पूर्णकाम वही ।
स्वर-व्यंजन-रहित अघोष वही, चेतन ध्वनि-सिन्धु अदोष वही ॥५॥
है एक ओम् सत्नाम वही, ऋषि-सेवित प्रभु का नाम वही ।
X X X X X मुनि-सेवित गुरु का नाम वही ।
भजो ॐ ॐ प्रभु नाम यही, भजो ॐ ॐ 'मँहीँ' नाम यही ॥६॥

(६)

(सन्तमत-सिद्धान्त)

१. जो परम तत्त्व आदि-अन्त-रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर, सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे ही सर्वेश्वर-सर्वाधार मानना चाहिए तथा अपरा (जड़) और परा (चेतन); दोनों प्रकृतियों के पार में, अगुण और सगुण पर, अनादि-अनन्त-स्वरूपी, अपरम्पार शक्तियुक्त, देशकालातीत, शब्दातीत, नाम-रूपातीत, अद्वितीय, मन-बुद्धि और इन्द्रियों के परे जिस परम सत्ता पर यह सारा प्रकृति-मण्डल एक महान् यन्त्र की नाईं परिचालित होता रहता है, जो न व्यक्ति है और न

व्यक्त है, जो मायिक विस्तृतत्व-विहीन है, जो अपने से बाहर कुछ भी अवकाश नहीं रखता है, जो परम सनातन, परम पुरातन एवं सर्वप्रथम से विद्यमान है, सन्तमत में उसे ही परम अध्यात्म-पद वा परम अध्यात्मस्वरूपी परम प्रभु सर्वेश्वर (कुल्ल मालिक) मानते हैं।

२. जीवात्मा सर्वेश्वर का अभिन्न अंश है ।

३. प्रकृति आदि-अन्त-सहित है और सृजित है ।

४. मायाबद्ध जीव आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है । इस प्रकार रहना जीव के सब दुःखों का कारण है । इससे छुटकारा पाने के लिए सर्वेश्वर की भक्ति ही एकमात्र उपाय है ।

५. मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टि-साधन और सुरत-शब्द-योग द्वारा सर्वेश्वर की भक्ति करके अन्धकार, प्रकाश और शब्द के प्राकृतिक तीनों परदों से पार जाना और सर्वेश्वर से एकता का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पा लेने का मनुष्य-मात्र अधिकारी है ।

६. झूठ बोलना, नशा खाना, व्यभिचार करना, हिंसा करनी अर्थात् जीवों को दुःख देना वा मत्स्य-मांस को खाद्य पदार्थ समझना और चोरी करनी; इन पाँचो महापापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए ।

७. एक सर्वेश्वर पर ही अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अन्तर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानाभ्यास; इन पाँचो को मोक्ष का कारण समझना चाहिए ।

(७)

श्री सद्गुरू की सार शिक्षा, याद रखनी चाहिए ।
अति अटल श्रद्धा प्रेम से, गुरु-भक्ति करनी चाहिए ॥
मृग-वारि सम सब ही प्रपंचन्ह, विषय सब दुखरूप हैं ।
निज सुरत को इनसे हटा, प्रभु में लगाना चाहिए ॥
अव्यक्त व्यापक व्याप्य पर जो, राजते सबके परे ।
उस अज अनादि अनन्त प्रभु में, प्रेम करना चाहिए ॥
जीवात्म प्रभु का अंश है, जस अंश नभ को देखिये ।
घट मठ प्रपंचन्ह जब मिटैं, नहिं अंश कहना चाहिए ॥
ये प्रकृति द्वय उत्पत्ति-लय, होवैं प्रभू की मौज से ।
ये अजा अनाद्या स्वयं हैं, हरगिज न कहना चाहिए ॥
आवागमन सम दुःख दूजा, है नहिं जग में कोई ।
इसके निवारण के लिए, प्रभु-भक्ति करनी चाहिए ॥

जितने मनुष तनधारि हैं, प्रभु-भक्ति कर सकते सभी।
अन्तर व बाहर भक्ति कर, घट-पट हटाना चाहिए॥
गुरु जाप मानस ध्यान मानस, कीजिए दृढ़ साधकर।
इनका प्रथम अभ्यास कर, स्रुत शुद्ध करना चाहिए॥
घट तम प्रकाश व शब्द पट त्रय, जीव पर हैं छा रहे।
कर दृष्टि अरु ध्वनि-योग-साधन, ये हटाना चाहिए॥
इनके हटे माया हटेगी, प्रभु से होगी एकता।
फिर द्वैतता नहिं कुछ रहेगी, अस मनन दृढ़ चाहिए॥
पाखण्ड अरुऽहंकार तजि, निष्कपट हो अरु दीन हो।
सब कुछ समर्पण कर गुरू की, सेव करनी चाहिए॥
सत्संग नित अरु ध्यान नित, रहिये करत संलग्न हो।
व्यभिचार चोरी नशा हिंसा, झूठ तजना चाहिए॥
सब सन्तमत-सिद्धान्त ये, सब सन्त दृढ़ हैं कर दिये।
इन अमल थिर सिद्धान्त को, दृढ़ याद रखना चाहिए॥
यह सार है सिद्धान्त सबका, सत्य गुरु को सेवना।
'मेँहीँ' न हो कुछ यहि बिना, गुरु सेव करनी चाहिए॥

(८)

(सन्तमत की परिभाषा)

१. शान्ति स्थिरता वा निश्चलता को कहते हैं।

२. शान्ति को जो प्राप्त कर लेते हैं, सन्त कहलाते हैं।

३. सन्तों के मत वा धर्म को सन्तमत कहते हैं।

४. शान्ति प्राप्त करने का प्रेरण मनुष्यों के हृदय में स्वाभाविक ही है। प्राचीन काल में ऋषियों ने इसी प्रेरण से प्रेरित होकर इसकी पूरी खोज की और इसकी प्राप्ति के विचारों को उपनिषदों में वर्णन किया। इन्हीं विचारों से मिलते हुए विचारों को कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि सन्तों ने भी भारती और पंजाबी आदि भाषाओं में सर्वसाधारण के उपकारार्थ वर्णन किया। इन विचारों को ही सन्तमत कहते हैं; परन्तु सन्तमत की मूलभित्ति तो उपनिषद् के वाक्यों को ही मानने पड़ते हैं; क्योंकि जिस ऊँचे ज्ञान का तथा उस ज्ञान के पद तक पहुँचाने के जिस विशेष साधन—नादानुसन्धान अर्थात् सुरत-शब्द-योग का गौरव सन्तमत को है, वे तो अति प्राचीन काल की इसी भित्ति पर अंकित होकर जगमगा रहे हैं। भिन्न-भिन्न काल तथा देशों में सन्तों के प्रकट होने के कारण तथा इनके भिन्न-भिन्न नामों पर इनके अनुयायियों-द्वारा सन्तमत के भिन्न-भिन्न नामकरण होने के कारण

सन्तों के मत में पृथक्त्व ज्ञात होता है; परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातों को तथा पन्थाई भावों को हटाकर विचारा जाय और संतों के मूल एवं सार विचारों को ग्रहण किया जाय, तो यही सिद्ध होगा कि सब सन्तों का एक ही मत है।

(९)

(अपराह्न एवं सायंकालीन विनती)

प्रेम-भक्ति गुरु दीजिये, विनवौं कर जोड़ी।
पल-पल छोह न छोड़िये, सुनिये गुरु मोरी॥१॥
युग-युगान चहुँ खानि में, भ्रमि-भ्रमि दुख भूरी।
पाएउँ पुनि अजहूँ नहिं, रहुँ इन्हतें दूरी॥२॥
पल-पल मन माया रमे, कभुँ विलग न होता।
भक्ति-भेद बिसरा रहे, दुख सहि-सहि रोता॥३॥
गुरु दयाल दया करी, दिये भेद बताई।
महा अभागी जीव के, दिये भाग जगाई॥४॥
पर निज बल कछु नाहिं है, जेहि बने कमाई।
सो बल तबहीं पावऊँ, गुरु होयँ सहाई॥५॥
दृष्टि टिकै स्रुति धुन रमै, अस करु गुरु दाया।
भजन में मन ऐसो रमै, जस रम सो माया॥६॥
जोत जगे धुनि सुनि पड़ै, स्रुति चढ़ै अकाशा।
सार धुन्न में लीन होइ, लहे निज घर वासा॥७॥
निजपन की जत कल्पना, सब जाय मिटाई।
मनसा वाचा कर्मणा, रहे तुम में समाई॥८॥
आस त्रास जग के सबै, सब वैर व नेहू।
सकल भुलै एके रहे, गुरु तुम पद स्नेहू॥९॥
काम क्रोध मद लोभ के, नहिं वेग सतावै।
सब प्यारा परिवार अरु, सम्पति नहिं भावै॥१०॥
गुरु ऐसी करिये दया, अति होइ सहाई।
चरण-शरण होइ कहत हौं, लीजै अपनाई॥११॥
तुम्हरे जोत-स्वरूप अरु, तुम्हरे धुन-रूपा।
परखत रहूँ निशि-दिन गुरु, करु दया अनूपा॥१२॥

(आरती)

(१०)

आरति संग सतगुरु के कीजै। अन्तर जोत होत लख लीजै॥
पाँच तत्त्व तन अग्नि जराई। दीपक चास प्रकाश करीजै॥

गगन-थाल रवि-शशि फल-फूला। मूल कपूर कलश धर दीजै॥
अच्छत नभ तारे मुक्ताहल। पोहप माल हिय हार गुहीजै॥
सेत पान मिष्टान्न मिठाई। चन्दन धूप दीप सब चीजैं॥
झलक झाँझ मन मीन मँजीरा। मधुर-मधुर धुनि मृदंग सुनीजै॥
सर्व सुगन्ध उड़ि चली अकाशा। मधुकर कमल केलि धुनि धीजै॥
निर्मल जोत जरत घट माहीं। देखत दृष्टि दोष सब छीजै॥
अधर-धार अमृत बहि आवै। सतमत-द्वार अमर रस भीजै॥
पी-पी होय सुरत मतवाली। चढ़ि-चढ़ि उमगि अमीरस रीझै॥
कोट भान छवि तेज उजाली। अलख पार लखि लाग लगीजै॥
छिन-छिन सुरत अधर पर राखै। गुरु-परसाद अगम रस पीजै॥
दमकत कड़क-कड़क गुरु-धामा। उलटि अलल 'तुलसी' तन तीजै॥

(११)

आरति तन-मन्दिर में कीजै। दृष्टि युगल कर सन्मुख दीजै॥
चमके बिन्दु सूक्ष्म अति उज्ज्वल। ब्रह्मजोति अनुपम लख लीजै॥
जगमग-जगमग रूप-ब्रह्मण्डा। निरखि-निरखि जोती तज दीजै॥
शब्द-सुरत-अभ्यास सरलतर। करि-करि सार शबद गहि लीजै॥
ऐसी जुगति काया-गढ़ त्यागि। भव-भ्रम-भेद सकल मल छीजै॥
भव-खण्डन आरति यह निर्मल। करि 'मेँहीँ' अमृत रस पीजै॥

(१२)

(गुरु-संकीर्त्तन)

भजु मन सतगुरु सतगुरु सतगुरु जी॥ टेक॥
जीव चेतावन हंस उबारन, भव भय टारन सतगुरु जी॥ भजु०॥
भ्रम तम नाशन ज्ञान प्रकाशन, हृदय विगासन सतगुरु जी॥ भजु०॥
आत्म अनात्म विचार बुझावन, परम सुहावन सतगुरु जी॥ भजु०॥
सगुण अगुणहिं अनात्म बतावन, पार आत्म कहैं सतगुरु जी॥ भजु०॥
मल अनात्म ते सुरत छोड़ावन, द्वैत मिटावन सतगुरु जी॥ भजु०॥
पिण्ड ब्रह्माण्ड के भेद बतावन, सुरत छोड़ावन सतगुरु जी॥ भजु०॥
गुरु-सेवा सत्संग दृढ़ावन, पाप निषेधन सतगुरु जी॥ भजु०॥
सुरत-शब्द-मारग दरसावन, संकट टारन सतगुरु जी॥ भजु०॥
ज्ञान विराग विवेक के दाता, अनहद राता सतगुरु जी॥ भजु०॥
अविरल भक्ति विशुद्ध के दानी, परम विज्ञानी सतगुरु जी॥ भजु०॥
प्रेम दान दो प्रेम के दाता, पद राता रहें सतगुरु जी॥ भजु०॥
निर्मल युग कर जोड़ि के विनवौं, घट-पट खोलिय सतगुरु जी॥ भजु०॥

❑ ❑ ❑

पुस्तक प्रणेता का परिचय

नाम : स्वामी कमलानंद
पिता : स्व० तेतर साहु
जन्म : २ जनवरी १९४२ ई०
जन्म स्थान : ग्राम-भटपुरा, पत्रा०-पहाड़पुर, जिला-सहरसा (बिहार)
पितृगृह : ग्रा०-दह, पत्रा०-आगर, जि०-सहरसा (बिहार)
शिक्षा : एम० ए० द्वय (अंग्रेजी एवं दर्शनशास्त्र), बी०एल०, बी०एड०, सी०इन०टी०ई०
सेवा : बिहार सरकार के अधीन शिक्षण-सेवा से सम्बद्ध रहे।
संतमत की दीक्षा : १९६९ ई०
प्रखण्ड मंत्री : सिमरी बख्तियारपुर (सहरसा)- १९७१ से १९८१ ई०।
जिला मंत्री : सहरसा, सुपौल, मधेपुरा (संयुक्त)-१९८२ से १९८४ ई०।
जिला अध्यक्ष : सहरसा एवं सुपौल (संयुक्त)-१९८५ से १९९० ई०।
जिला अध्यक्ष : सहरसा जिला-१९९० से १९९५ ई०।
महासभा का सदस्य : १९८५ से १९९३ ई०।
नादानुसंधान की दीक्षा : परमपूज्य गुरुदेव महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के आदेशानुसार वर्त्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि संतसेवी जी महाराज द्वारा प्रदत्त-१९८१ ई०।
आश्रम निवास : २००२ ई० से
संन्यास ग्रहण : २००४ ई०
आश्रम समिति का सदस्य : २००३ से २००५ ई०
आश्रम सत्संग मंच का संचालन : २००३ से अद्यतन
महासभा द्वारा अधिकृत : विभिन्न जिलों में ध्यानाभ्यास कार्यक्रमों के संचालन हेतु : २००५ ई०।
भजन भेद प्रदान करने हेतु अधिकृत : २००६ ई०
रचना : (१) गुरु ज्ञान पदावली, (२) अखिया बन्द के चलवैय हो : संतमत लोकगीत, (३) संतमत भजनावली-भाग १, (४) संतमत भजनावली-भाग २, (५) संतमत भजनावली सार।
वर्त्तमान पता : महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३

महर्षि मेँहीँ साहित्य सुमनावली

१. सत्संग-योग (चारो भाग)
२. वेद-दर्शन-योग
३. रामचरितमानस-सार सटीक
४. महर्षि मेँहीँ-पदावली
५. संतवाणी सटीक
६. विनय-पत्रिका-सार सटीक
७. भावार्थ-सहित घटरामायण पदावली
८. श्रीगीता-योग-प्रकाश
९. मोक्ष-दर्शन
१०. सत्संग-सुधा, भाग १, २, ३, ४
११. ईश्वर का स्वरूप और उसकी प्राप्ति
१२. ज्ञान-योग-युक्त ईश्वर-भक्ति
१३. महर्षि मेँहीँ सत्संग-सुधा-सागर
१४. महर्षि मेँहीँ-वचनामृत (प्रथम खंड)

महर्षि संतसेवी साहित्य सुमनावली

१. ओ३म् विवेचन
२. योग माहात्म्य
३. जग में ऐसे रहना
४. गुरु-महिमा
५. सत्य क्या?
६. सुख दुःख
७. लोक-परलोक-उपकारी
८. परमात्म-दर्शन
९. परमात्म-भक्ति
१०. सर्वधर्म समन्वय : संतमत
११. महर्षि मेँहीँ-पदावली-सार सटीक
१२. संतमत में साधना का स्वरूप
१३. एक गुप्त मत
१४. बाबा देवी साहब के संस्मरण
१५. संवाद (जिज्ञासा समाधान)
१६. महर्षि मेँहीँ की शिक्षाप्रद कहानियाँ
१७. अध्यात्म-विवेचन
१८. साधना में सफलता कैसे?

सत्संगी साधकों द्वारा विरचित

१. अमीघूँट–स्वामी श्री श्रीधर दासजी महाराज
२. महर्षि मेँहीँ के दिनचर्या उपदेश–गुरुसेवी स्वामी भगीरथ दासजी
३. महर्षि मेँहीँ तत्त्वज्ञान बोधिनी–गुरुसेवी स्वामी भगीरथ दासजी
४. महर्षि मेँहीँ-चरित–डॉ० सत्यदेव साह (एम०ए०, पी-एच०डी०)
५. **Essence of Gita Yoga**–डॉ० सत्यदेव साह (एम०ए०, पी-एच०डी०)
६. **The Philosphy of Salvation**–डॉ० सत्यदेव साह ”
७. **Satsang-Yoga (part-1)**–श्री सिद्धेश्वर मल्लिक

स्वामी कमलानन्द द्वारा विरचित साहित्य

१. गुरु ज्ञान पदावली
२. अखियाँ बंद कै चलवैय हो : संतमत लोकगीत
३. संतमत भजनावली, भाग १
४. संतमत भजनावली, भाग २
५. संतमत भजनावली सार

प्राप्ति-स्थान

प्रकाशन विभाग
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पघाट, भागलपुर-३